॥श्री॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

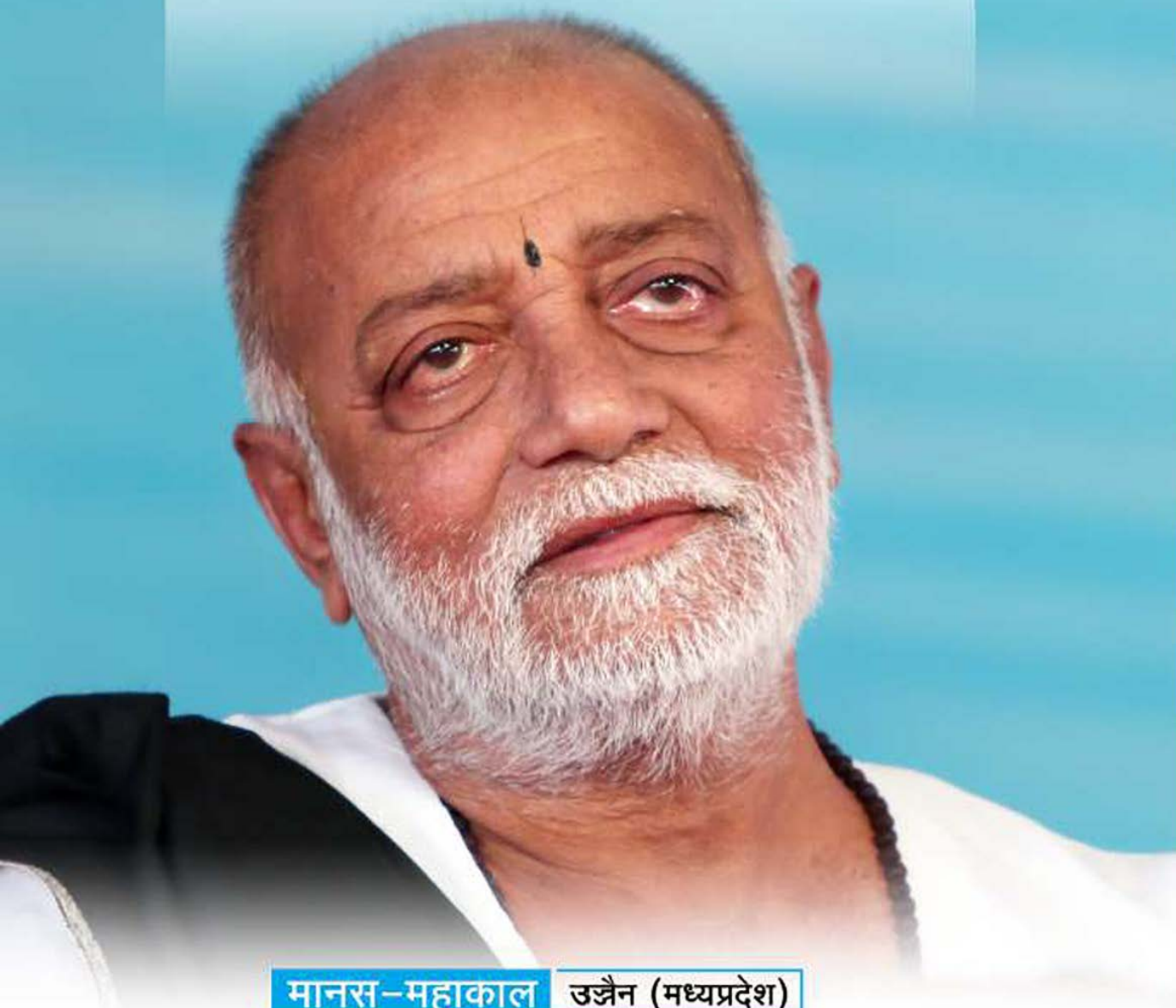

मानस-महाकाल | उज्जैन (मध्यप्रदेश)

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं। गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

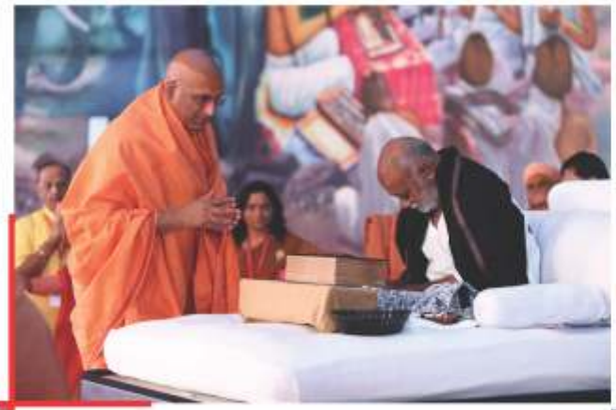

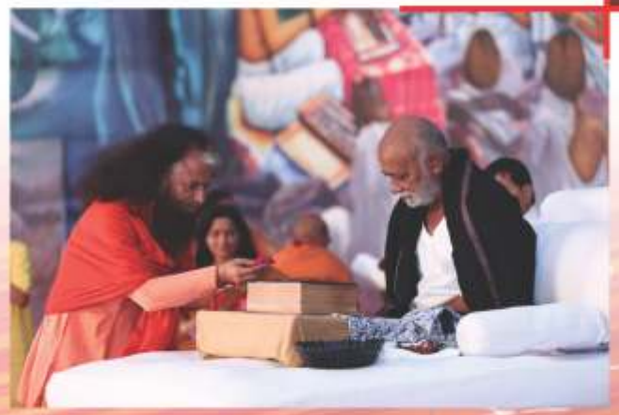

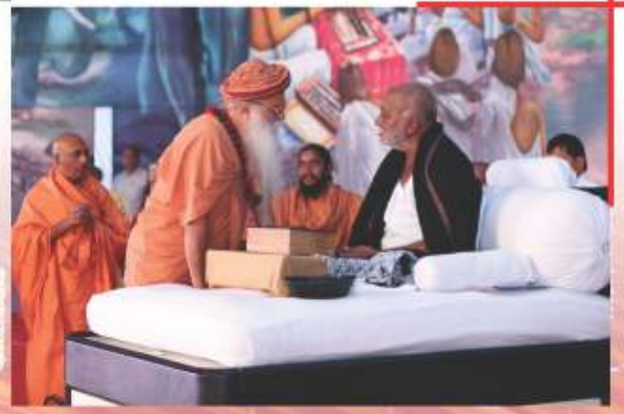

।। रामकथा ।।
मानस-महाकाल

मोरारिबापू
उज्जैन (मध्यप्रदेश)
दिनांक : २३-४-२०१६ से १-५-२०१६
कथा-क्रमांक : ७९३

प्रकाशन :
अक्टूबर, २०१७

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम-पियाला

भगवान महाकालेश्वर की नगरी उज्जैन (मध्यप्रदेश) में सिंहस्थ कुंभ के पावन पर्व पर दिनांक २३-४-२०१६ से १-५-२०१६ दरमियान मोरारिबापू की रामकथा सम्पन्न हुई। महाकाल की परिकम्मा करती यह कथा 'मानस-महाकाल' विषय पर केन्द्रित हुई।

इस कथा में बापू ने काल मानी समय, काल मानी मृत्यु और काल मानी नियति जैसी काल की अर्थछाया स्पष्ट की एवम् काल के अन्य कई प्रकार-विभाग का परिचय भी दिया। प्रत्येक काल को जो नियंत्रित करता है उसका नाम महाकाल है, ऐसे शास्त्रविधान का संदर्भ भी बापू ने दिया और कहा कि शिव महाकाल के रूप में कराल है लेकिन महाकाल का काल, महाकालेश्वर कृपालु है। महाकाल ने भुशुंडि को दीनता, मलिनता, दरिद्रता और दुःख से मुक्त किया उसके परिप्रेक्ष्य में बापू ने ऐसा निवेदन भी किया कि दीनता मिटानी हो, मलिनता मिटानी हो, दारिद्र्य मिटाना हो और दुःख मिटाना हो तो जाओ महाकाल की शरण में।

कागभुशुंडि ने किये अपराधों से मुक्ति के लिए गाये गये 'रुद्राष्टक' की महिमा बापू ने इन शब्दों में प्रकट की, बड़ा अद्‌भुत, अलौकिक है ये 'रुद्राष्टक।' ये उपरवाले आकाश से नहीं आया, ये चिदाकाश से निकली वाणी है। अंदर से फूटी एक अद्‌भुत वाणी 'रुद्राष्टक' है। 'रुद्राष्टक' इन्सान की रामभक्ति को दृढ करता है। 'रुद्राष्टक' का पाठ कृष्णभक्ति को बल देता है। 'रुद्राष्टक' का पारायण आदमी में आह्लाद और ऊर्जाशक्ति भर देता है। 'रुद्राष्टक' सिद्ध भी है और शुद्ध भी है।

द्वेष के कारण भुशुंडि गुरुद्रोह करता है, इस प्रसंग का विशद विवरण करते हुए बापू ने आज के समय-संदर्भ में भी आश्रितों के दस अपराधों से बचने का जिक्र किया। बापू का कहना हुआ कि गुरु के साथ अद्वैत संबंध रखना, गुरु के प्रति द्वेष, इर्ष्या और स्पर्धा के कारण गुरुद्रोह करना, गुरु में मनुष्यबुद्धि-नरबुद्धि देखना, गुरु का दिया हुआ मंत्र छोड़ देना, गुरुग्रंथ छोड़ना, गुरुगादी की कामना रखना, गुरु को साध्य के बदले साधन बनाना, गुरु की पादुका या गुरु की दी हुई चीज का अपमान करना, गुरु को सोने-चांदी या भौतिक पदार्थों से तोलने की चेष्टा करना और गुरु के सामने झूठ बोलना गुरु-अपराध है। हम इन अपराधों से बचें।

गुरु-अपराध साथ ही बापू ने तथाकथित गुरुओं द्वारा होते रहते दस शिष्य-अपराध का निर्देश भी किया। जैसे कि शिष्य का धन हरना, शिष्य और शिष्यपरिवार का शोषण करना, शिष्य को अशुद्ध मंत्रदान करना, शिष्य को बार-बार प्रलोभन और भय दिखाना, कुछ पाने के लिए शिष्य की झूठी सराहना करना, शिष्य की पात्रता देखे बिना उनको शास्त्रदान करना, शिष्य ने किये अपराध का बदला लेना, शिष्य को झूठे चमत्कार दिखाना, शिष्यों को 'सेवकश्री', 'सेवकशिरोमणि' जैसी पदवियां देना और ब्रह्म दिखाने के बदले भ्रमित करना ये दस शिष्य-अपराध है।

'मानस-महाकाल' रामकथा के माध्यम से बापू की व्यासपीठ द्वारा यूं भगवान महाकाल का वाङ्मय अभिषेक हुआ।

– नीतिन वडगामा

'रामायण' महाकाव्य है, 'रामचरित मानस' महामंत्र है

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं। गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

बाप! भगवान महाकालेश्वर प्रभु की नगरी में, पुण्यप्रवाह क्षिप्रा के तट पर, पूरी पृथ्वी पर, जिस कुंभ मेले की एक अपनी महिमा है, ऐसे सिंहस्थ पावन पर्व पर आयोजित इस नव दिवसीय रामकथा, जिसमें अभी-अभी हमारे परमपूज्य महामंडलेश्वर, पद्मविभूषण, मुझ पर सालों से जिसका स्नेहादर बरस रहा है ऐसे 'भारत माता मंदिर' के अधिष्ठाता पूज्य स्वामीजी महाराज, जिसने प्रसन्नता से अपने आशीर्वचन हम सब के प्रति प्रेषित करके हमें विशेष भूरिभाग बनाया। मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूं। बहुत समय से जरा भी बिना दबाव मेरे से कहते रहे। आदेश देते तो मैं जब कहे दौड़ आता। लेकिन बिना दबाव बस, इतना ही कहते रहते, कभी एक कथा कुंभ की शिबिर में हो। और मुझे भी इतना ही आनंद था कि आपकी कृपाछाया में नव दिन का रामकथा का अनुष्ठान हो। परमपूज्य जूना पीठाधीश्वर, आचार्य महामंडलेश्वर, हमारे पूज्य महाराजश्री, भगवन्, आपकी सरलता, आपकी सबल सरलता को प्रणाम करता हूं। यह संतगण मेरी व्यासपीठ को बहुत स्नेहादर और आशीर्वाद देते रहे हैं। यही हमारी संपदा है। मैं आपको प्रणाम करता हूं। हमारे परमस्नेही, परमपूज्य मुनिजी महाराज, आपके चरणों में भी मेरा प्रणाम। नागपुर के इस्लाम धर्म के एक बोहरा शाखा के धर्मगुरु यहां पधारे हैं। मैं आपको सलाम करता हूं। आदाब करता हूं। और बहुत साल पहले एक स्वाभाविक निमंत्रण पर हमारे छोटे से गांव में, तलगाजरडा के चित्रकूट के हनुमानजी के पास बैठकर जिसने शास्त्रीय गायन किया था, न कोई मंच था, न कुछ था! ऐसे सरल सूरसम्राट, पद्मविभूषण हमारे परम आदरणीय पंडितजी, मैं आपको भी नमन करता हूं। आपकी संगीत साधना को प्रणाम करता हूं। मंच पर विराजित सभी मेरे पूज्यचरण जो विधविध, अपनी-अपनी परंपरा से जुड़े हैं; आप सभी को मैं प्रणाम करता हूं। इस कथा में भगवान की कृपा से, महाराजश्री की कृपा से जो निमित्तमात्र यजमान हुए हैं वो यजमान परिवार के पुण्य को मैं सराहूं कि इस प्रेमयज्ञ में वो निमित्त बन रहे हैं। आप सभी मेरे भाई-बहन और अभी-अभी भगवन् जिस तरह से बयान कर रहे थे कि इस कुंभ में कितनी-कितनी चेतनाएं किन-किन रूप में आती हैं। इन प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी चेतनाओं को मैं प्रणाम करता हूं। फिर एक बार आप सबको व्यासपीठ से मेरा प्रणाम।

बड़ी खुशी है भगवन्, बड़ी प्रसन्नता है कि फिर एक बार कुंभ के पर्व में रामकथा गाने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं सोच रहा था इस नव दिवसीय रामकथा में कौन-सा विषय उठाऊं कि जिसके इर्द-गिर्द में हम नव दिन परिकम्मा करें। यही

विचार मन में गुरुकृपा से दृढ हुआ कि मैं 'मानस-महाकाल' गाऊं। इस कथा का केन्द्रीय बिंदु, इस कथा का केन्द्रीय विचार भगवान महाकाल को मैं केन्द्र में रखकर रामकथा गुरुकृपा से और हमारे सभी परम विभूतियों के आशीर्वाद से और आपकी शुभकामना से गाने का आरंभ कर रहा हूं। और मैंने जो दो पंक्तियां उठाई है भूमिका के लिए वो आप सब जानते हैं। महाकाल के मंदिर में कागभुशुंडि के गुरु, परमसाधु, 'परमारथ बिंदक', एक बुद्धपुरुष। मेरी दृष्टि में थोड़ा अविवेक कर गया उसका शिष्य! शिष्य केवल शिव उपासक रहा, हरिनिंदक रहा और उसका गुरु, बुद्धपुरुष वो भी शिव उपासक ही तो थे लेकिन हरिनिंदक नहीं थे। और गुरु दोनों को सम समझ करके विश्व के सामने सेतु का बोध दे रहे हैं कि सब एक हैं, जोड़ो। मैं वर्ण-वर्ण में नहीं जाऊंगा लेकिन थोड़ी अपात्रता के कारण ये शिष्य अविवेक कर लेता है और कहते हैं गरुडजी के सामने कागभुशुंडि कि 'एक बार हर मंदिर', एक बार महाकालेश्वर के मंदिर में शिवनाम का, शिवमंत्र का जाप कर रहा था उसी समय मेरे गुरु पधारे लेकिन मैंने उठकर उसको प्रणाम नहीं किया! मेरे गुरु तो सम्यक् बोधप्राप्त थे, उसको तो कोई रोष नहीं हुआ लेकिन गुरु अवमानना की ये जो भूल हुई उसको भगवान महाकाल सह नहीं पाए। और महाकाल क्रोध में आकर शाप दे देते हैं। और उसी समय भुशुंडि के गुरु कांप जाते हैं। और भगवान शंकर को करुणा करने के लिए फिर वो महाकाल के मंदिर में 'रुद्राष्टक' का गायन करते हैं। इस 'रुद्राष्टक' से ये दो पंक्तियां मैंने उठाई है।

मेरा मनोरथ है; मैंने आपके आशीर्वाद से, गुरुकृपा से 'रुद्राष्टक' पर तीन कथाएं तो गाई है। अभी दो कथा और गानी है। मूल पांच गाना है। आज थोड़ा स्पर्श इस कथा में भी करूंगा लेकिन नाम रख रहा हूं 'मानस-महाकाल।' और दो पंक्तियां जो उठाई है -

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।
गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

तो बाप! इन दो पंक्तियों के आधार पर हम नव दिन तक भगवत् चर्चा करेंगे। भगवान महाकाल का अभिषेक करेंगे इस बहाने। रामकथा के पहले दिन एक परंपरा है। और ये कोई जड परंपरा नहीं है। मेरी दृष्टि में प्रवाही परंपरा है और परंपरा प्रवाही ही होनी चाहिए। जब भी किसी परंपरा जड हो जाती है तब कुरूप होने लगती है। वो प्रवाहित होनी चाहिए। तो एक प्रवाही परंपरा-सी रही कि वक्ता को चाहिए कि पहले दिन कथा का महिमागान करे। वैसे तो नव दिन महिमागान ही करना है कथा का फिर भी 'श्रीमद् भागवतजी' की कथा हो, रामकथा हो या तो कोई भी शास्त्र की, कोई भी ग्रंथ की कथा हो तो बहुधा पहले दिन उसका माहात्म्य गाया जाता है। और मेरी समझ में उसका अर्थ यही है कि इस बहाने कम से कम श्रोता को सद्ग्रंथ का परिचय हो जाए। उसकी महिमा गाने में, उसके कुछ प्रसंग जो हुए हो उसको कहते हुए वक्ता सद्ग्रंथ का परिचय करा देता हैं। और जब तक हम परिचय नहीं प्राप्त करते, जानते नहीं तब तक भरोसा नहीं बैठता शास्त्र पर। पहले जानना होता है फिर भरोसा बैठता है।

तो पहले दिन वक्ता को चाहिए कि ग्रंथ का, सद्ग्रंथ का परिचय कराए ताकि उसको भरोसा लगे कि ये किताब नहीं है, ये विश्व का कलेजा है। ये सब ग्रंथ मेरी समझ में धडकता ग्रंथ है। यदि जिसकी पूर्ण निष्ठा शास्त्र पर हो जाती है तो उसको कभी-कभी अनुभव भी होता हैं कि चौपाईयां नर्तन कर रही हैं; श्लोक अपने आप कुछ कहने जा रहा हैं। तो यह हमारे सभी सद्ग्रंथ हमारा कलेजा है। केवल अलमारी में रखने जैसी ही एक पुस्तक मात्र नहीं है। उसका परिचय हमें होना चाहिए। विश्ववंद्य गांधीबापू ऐसा कहा करते थे कि जो व्यक्ति 'महाभारत' और 'रामायण' के बारे में जानता नहीं उसको हिन्दुस्तानी होने का अधिकार नहीं है। 'रामायण' को तो महाकाव्य कहा ही है, 'महाभारत' महाकाव्य है। कभी-कभी 'रामचरित मानस' महाकाव्य है, ऐसा विद्वान और जो उसके बहुत मर्मज्ञ है, वो सिद्ध भी करने की कोशिश करते हैं। और है, ये महाकाव्य है। मेरी दृष्टि में यह महाकाव्य तो है ही लेकिन विशेष रूप में मोरारिबापू की दृष्टि में ये महाकाव्य की जगह महामंत्र है। 'रामचरित मानस' महामंत्र है। बीसवीं शताब्दी और इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में कई 'मानस' के साधकों ने ये महसूस भी किया है कि इससे कई कठिन से कठिन कुअंक मिट जाते हैं। सवाल है दृढ भरोसे का। तो ये

महाकाव्य तो है ही। 'रामायण' महाकाव्य है, 'रामचरित मानस' महामंत्र है।

भगवन् 'भारती माता मंदिर' के अधिष्ठाता बैठे हुए हैं तो मैं बहुत प्रसन्नता के साथ कहना चाहूंगा कि शायद दुनिया में पहली गांधी की कथा आपने की, लंडन में। गांधीजी पर आपने गांधीकथा की। शायद गांधीकथा के आप अधिवक्ता हैं। उसके बाद आपसे प्रेरणा लेकर मुझे भी धून चढ़ी तो मैंने भी 'मानस' के साथ महात्मा को जोड़कर पहले साबरमती आश्रम में 'मानस-महात्मा' एक भाग किया। फिर दांडीस्थान में किया। फिर राजघाट पर भी भगवान की कृपा से हुआ। तो गांधी ऐसा निवेदन करके हिंसा नहीं कर रहे हैं। जिस महापुरुष के जन्मदिन को पूरा विश्व 'अहिंसादिन' के रूप में मना रहा है उसका ये कोई कडक विधान नहीं है कि उसको हिन्दुस्तानी होने का अधिकार नहीं। लेकिन ये बहुत दिल से बोले हैं। गांधी कहते थे कि मैं जिस परंपरा में आया हूं इस परंपरा का मुझे बहुत गौरव है। इस परंपरा के ग्रंथों का मुझे बहुत गौरव है। और ग्रंथ और सद्ग्रंथ में मेरी समझ अनुसार भेद है। जो कहूंगा मेरी जिम्मेवारी है, मेरा व्यक्तिगत अभिप्राय है। ग्रंथ कभी-कभी प्रलोभन देते हैं और भय भी दिखाते हैं। सद्ग्रंथ उसको कहते हैं, जो कोई प्रलोभन न दे और कभी भय न दिखाए। ग्रंथों ने बहुत ऐसा काम किया है! चाहे कहीं के भी ग्रंथ हो। या तो प्रलोभन दिखाए या तो भय दिखाए! और भय दिखाए उसको धर्म कहना या नहीं उस पर चर्चा होनी चाहिए। धर्म तो अभय देता है। और निर्भय और अभय में भी अंतर है। निर्भयता के कारण अगल-बगल में कोई शस्त्रधारी जरूरी हो जाते हैं, लेकिन अंदर से वो आदमी निर्भय नहीं होता। मेरी समझ ऐसी बनी कि अभय होने के लिए किसी सद्गुरु के चरण में बैठकर किसी सद्ग्रंथ में प्रवेश करना जरूरी है। तो कोई भी पवित्र ग्रंथ, अपनी-अपनी धारा में जो हो, सबको पढ़ना चाहिए।

कुंभ का पर्व है। संन्यास जगत यहां बैठा है और मुझे भी गौरव है कि इस संन्यास परंपरा में; मेरा गांव जो तलगाजरडा है, जिस मिट्टी में मैं पेदा हुआ, अभी भी वहीं रहता हूं, छोटे से गांव में। मेरे जो सद्गुरु भगवान हैं मेरे दादा, मेरे ग्रान्डफाधर त्रिभुवनदासबापू, हम उसको दादा कहते थे। उसके छोटे भाई, अनुज विष्णुदास हरियाणी, वो गृह छोड कर निकल गए। कभी काशी गए, फिर कभी ऋषिकेश गए और कैलास आश्रम में दीक्षित हुए। और कैलास आश्रम की परंपरा में वो वहां के महामंडलेश्वर भी बने। पूज्य विष्णुदेवानंदगिरिजी महाराज ने एक पोस्टकार्ड लिखकर तलगाजरडा भेजा था, सालों पहले पोस्टकार्ड भेजा था। उसमें लिखा था कि बच्चों से कहना कि 'रामचरित मानस' और 'भगवद्गीता' का नित्य पारायण करे। यही तुम्हारा परिचय होगा।

तो रामकथा, 'भगवद्गीता' और 'महाभारत', इससे कौन अपरिचित है? ये हमारे महान सद्ग्रंथ है। आप जानते हैं कि 'रामचरित मानस' में सोपान हैं, 'वाल्मीकि रामायण' में कांड हैं। यद्यपि वाल्मीमि का ये शब्द इतना सबके दिल में बैठ गया है कि हम 'मानस' में भी 'बालकांड', 'अयोध्याकांड' आदि शब्द बोलते हैं। लेकिन तुलसी ने 'कांड' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। तुलसी ने प्रथम सोपान, द्वितीय सोपान, तृतीय सोपान, चतुर्थ सोपान, पंचम सोपान लिखा हैं। इस सद्ग्रंथ का सात सोपान में ग्रथन हुआ है। प्रथम सोपान जिसको हम सब 'बालकांड' कहते हैं। दूसरा सोपान 'अयोध्याकांड' कहते हैं। तीसरा 'अरण्यकांड', चौथा 'किष्किन्धाकांड', पांचवां 'सुन्दरकांड', छठ्ठा 'लंकाकांड', सातवां 'उत्तरकांड।' सात सोपान की ये सीढ़ी हमें बहुत उर्ध्वगन कराती है। तो ऐसा सात सोपान का ये सद्ग्रंथ है। तुलसी ने सात मंत्रों से प्रथम सोपान में मंगलाचरण करके उसका आरंभ किया। एक-दो मंत्र-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

तो बाप! प्रथम सोपान 'बालकांड' में पहले सात संस्कृत मंत्रों में मंगलाचरण किया। हम केवल मंगल उच्चारण करते हैं। उसकी भी महिमा है कि मंगल उच्चारण हो। स्वस्तिवचन हो उसकी महिमा है, अवश्य। लेकिन हम केवल मंगल उच्चारण में ही रह जाते हैं! मेरे देश के ऋषियों ने बड़ा सुंदर शब्द चुना कि मंगल उच्चारण तो हो ही लेकिन मंगल आचरण भी हो। इसलिए प्रत्येक ग्रंथों में जब मंगलाचरण आता है तो एक बड़ा मेसेज है कि केवल मंगल उच्चारण पर्याप्त नहीं हैं। व्यक्ति का मंगल आचरण बहुत आवश्यक है। इसीलिए हम उसको मंगलाचरण कहते हैं। सात मंत्र लिखे संस्कृत में और उसके बाद पांच सोरठे में गोस्वामीजी ने 'मानस' को ग्राम्यगिरा में, लोकबोली में

उतारा। हमारे संतों ने, हमारे महापुरुषों ने ये बहुत बड़ा काम किया। लोकबोली में आपने सद्ग्रंथों को उतारा। कबीर ने भी यही काम किया। भगवान तथागत बुद्ध ने भी यही काम किया। अभी-अभी कुछ दिन पहले जिसकी जन्म जयंती मनाई गई, ऐसे भगवान महावीरप्रभु, तीर्थंकर, आपने भी लोकबोली में अपने विचार प्रस्तुत किए। भगवान नाभाजी, वो भी अपनी पूरी भक्तमाल हमारी बोली में, हम उसको निकट से पहचान सके ऐसी बोली में उतारते हैं। तुलसी ने यही काम किया कि जिसका उच्चारण करने से आंतर-बाह्य शुद्धि हो जाती है ऐसे पवित्र श्लोकों का मंगलाचरण किया। लेकिन फ़िर तुरंत पांच सोरठें में वो बिलकुल देहाती भाषा, क्योंकि तुलसी का अवतारकार्य था श्लोक को लोक में उतारा जाए। और आज ये शायद गोस्वामीजी की जो अवतारधारणा थी वो सफल हुई कि तुलसी के श्लोक लोक तक पहुंच गए। देहात में भी तुलसी के मंगलाचरण के श्लोक देहाती आदमी भी, अनपढ़ आदमी भी बोलते हैं।

तो तुलसी का श्लोक लोक तक पहुंचा। और तुलसी ने जो लोकबोली में चौपाईयां लिखी वो जो श्लोक जानने वाले हैं उनके हृदय में घर कर गई। मैंने जितने महापुरुषों को सुना है, इनकी किताबें यथावकाश पढ़ी हो; करीब-करीब कई बड़े-बड़े महापुरुष, हमारे देश की विभूतियां, वो पूरा प्रवचन संस्कृत में देती हो तो भी, कभी न कभी तुलसी की चौपाई बीच में आ जाती हैं। और तुलसी की चौपाई के द्वारा एक तुलसीपत्र छप्पन भोग में डाला जाता हैं। संस्कृत वाङ्मय तो छप्पन भोग हैं लेकिन तुलसी की चौपाई तुलसीपत्र है। बड़ी करुणा की संत ने। और आज चौपाई मंत्र का काम कर रही है। मुझे एक पाठक ने पूछा कुछ समय पहले कि रामकथा के पारायण के बाद अथवा तो कथाओं में भी जो आरती गाई जाती है, उसमें ऐसा आता है-

गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी।।
तात मात सब बिधि तुलसी की।।
आरती श्री रामायणजी की।

तो मेरे पास जो बात आई वो ये आई कि गोस्वामीजी ने कहा कि 'रामायण' मेरे माता-पिता है, 'तात मात सब बिधि तुलसी की।' तो ये 'रामचरित मानस' तुलसी का माता-पिता कैसे? तो मैंने कहा कि मुझे तो इतनी समझ है कि श्लोक बाप है, चौपाई माँ है। गुजराती में कहते हैं, 'केवो श्लोक हतो?' 'केवो' नरवाचक संज्ञा। 'चौपाई केवी?' माँ वाचक। और बाप से माँ की ही करुणा ज्यादा होती है। इसीलिए चौपाई की करुणा का कोई पार नहीं। बाप तो उपर-उपर सन्मानजनक आ गए हैं, मंगलाचरण में आशीर्वाद दिए हैं पिताजी ने। और व्यस्त भी रहे हैं अन्य शास्त्रों में। इसीलिए कोई इधर गया, कोई इधर गया लेकिन

माँ तो हमारे साथ-साथ चली। और तुलसी ने फिर आखिर में बाप का नाम लिया ही नहीं! 'संत पंच चौपाई मनोहर...' माँ को ही याद किया।

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूं।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नहीं कहूं।।

समापन चौपाई में कर दी माँ की करुणा में नहाते हुए, लेकिन तुलसी को भी लगा कि 'मातृदेवो भव।' को तो पहले रखें पर बाप को भूल भी न जाए इसीलिए तो, 'यत्पूर्व प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं...' कहकर पिता को भी स्थापित किया। तो 'तात मात सब बिधि तुलसी की।' श्लोक उतरा लोक में। और त्रिभुवन को हम त्रिश्लोक नहीं कहते, त्रिलोक कहते हैं। ये लोक में उतरा श्लोक आसमान में भी गुंजा; धरती पर गाई जा रही है रामकथा। कोई लोक इससे खाली नहीं हैं।

जगद्गुरु भगवान आदि शंकराचार्य का एक विचार था कि सनातन धर्मावलंबियों को चाहिए कि पंचदेव को आराधें-गणेश, सूर्य, भगवान विष्णु, शिव, दुर्गा। मानो समन्वय साधते हुए तुलसी अपने सद्ग्रंथ में इन पांचों देवों की आराधना के संकेत करते हैं। मैं युवान भाई-बहनों को हर वक्त कहता हूं और हर वक्त दोहराता रहूंगा कि पांच देवों की पूजा जरूरी है। अथवा तो इन देवों के नाम से जो सार हमें प्राप्त होता है, इस सार को, पांच सार को, प्रेम करना जरूरी है। देवों की पूजा करो, उसके सार को प्रेम करो। गणेश माने विवेक, विनय। युवान को विवेक से प्यार करना चाहिए। और जिससे प्यार होता है उसको हम छोड़ते नहीं, छोड़ना अच्छा नहीं लगता। जब विवेक से प्यार हो जाएगा तो हमारे जीवन को विवेक से अलंकृत कर सकते हैं। तो गणेश माने एक दृष्टि है। आप गणेश की पूजा करो, जो-जो विधि-विधान हो करो, आपको प्रणाम है लेकिन इतना समय न हो, समझ न हो, विवेक को बरकरार रखे तो गणेशपूजा।

सूर्यपूजा का अभिप्राय व्यासपीठ का है कि उजाले में जीने का शिव-संकल्प हो। जहां तक संभव हो हम प्रकाश में जीने की कोशिश करें। हमारी परंपरा ने 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' की सूचना दी है, ये हो गई सूर्यवंदना। सूर्य नमस्कार, सूर्य को अर्घ्य चढ़ाना, सूर्यनमन ये तो करना ही चाहिए। लेकिन कोई ये न कर पाए तो प्रकाश में जीने का शुभ-संकल्प ये सूर्यवंदना है। भगवान विष्णु की पूजा 'पुरुषसूक्त' से आप करे अथवा तो विष्णु भगवान के जितने स्तोत्र होते हैं अथवा तो जो विद्या हो उसके मुताबिक करे, आप प्रणम्य हैं। लेकिन यदि न हो पाए तो विष्णु का अर्थ है व्यापकता, विशालता, औदार्य। हमारे विचारों को, हमारे दृष्टिकोण को विशाल रखें। विशालता के साथ अपने को जोड़ना। और भारतीय सनातन धर्म ने, भारतीय वैदिक परंपरा ने इसी दो भुजाओं में सबको निमंत्रित किया कि आओ। इसीलिए विष्णु सागर में निवास करते हैं, गगन सदृश है। क्यों? ये विशालता की ओर संकेत है। विचार विशाल हो। विष्णु माने विशालता। युवक भाई-बहन, हमारा हृदय, हमारा दृष्टिकोण विशाल हो।

काबे से बुतकदे से कभी बज्में-जाम से।
आवाज़ दे रहा हूं तुम्हें हर मकाम से।।

ये औदार्य, ये विशालता विष्णु-वंदना है। 'पुरुषसूक्त' का पाठ जब हम सुनते हैं, उसका विवरण पढ़ते हैं, उसकी किताबें जब हम पढ़ते हैं तो व्यापकता के सिवा कुछ नजर नहीं आता उसमें। गणेश की पूजा माने विवेक। सूर्य की पूजा माने उजाले में रहने का शिवसंकल्प। विष्णु की पूजा माने दिल की व्यापकता, विशालता, औदार्य। शिव की वंदना, शिव का स्मरण, रुद्राभिषेक तो करना ही चाहिए, ये तो महिमा है। यहां तो महाकाल बैठा है। उसकी तो महिमा कैसे कहूं लेकिन दूसरों के कल्याण के बारे में सोचना ये शिव अभिषेक है। अभिषेक तो हम कभी-कभी करते हैं लेकिन कल्याणकारी भाव, विश्व का मंगल हो, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' ये कल्याण मंत्र है, ये शिव अभिषेक है। और दुर्गा, 'भवानीशंङ्क रौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।' पार्वती माने श्रद्धा। दुर्गा की पूजा हम करते हैं नवरात्रि में, करनी चाहिए; रोज करते हैं जो जिसके उपासक हो। लेकिन श्रद्धा खंडित न हो, श्रद्धा विकलांग न हो, श्रद्धा अपाहिज न हो, श्रद्धा सर्वांग संपन्न रहे। यही सात्त्विक श्रद्धा हमारे आंगन में गाय के रूप में बंधी रहे, हमारे अंतःकरण में बनी रहे। हरिकृपा से हृदय में निरंतर स्थान हो सात्त्विक श्रद्धा का। आख़िर में तो गुणातीत श्रद्धा तक जाना होता है। तो बाप! पांच देवों की पूजा गोस्वामीजी करते हैं। उसके बाद तुलसी गुरुवंदना करते हैं-

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

गुरुवंदना से शास्त्र का, इस पावन सद्ग्रंथ का आरंभ हो रहा है। और गुरुवंदना जो आदमी कर लेता है, गुरु चरणों में जिसका दृढ़ाश्रय है, दृढ़ भरोसा है उसके लिए मुझे लगता है गुरु ही गणेश है, गुरु ही गौरी है, गुरु ही शिव है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही सूर्य है। एक गुरु में सब कुछ समाहित है। ये भी हो सकता है। तो तुलसी गुरुवंदना से शास्त्र का आरंभ करते हैं। और गुरुवंदना का ये पहला प्रकरण, 'मानस-गुरुगीता' जिसको मेरी व्यासपीठ कहती है। आईए, जहां चौपाई से आरंभ होता है उसकी कुछ पंक्तियों का गायन करें-

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा ।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।

तो, 'मानस' के आरंभ में पहला प्रकरण गुरुवंदना का प्रकरण है। मैं इतना ही कहकर आगे बढ़ूं कि जिसको गुरु की जरूरत न पड़े और वो सीधे परमतत्त्व को यदि पा ले तो कोई गिला नहीं हैं; प्रसन्नता है, प्रणाम है। कई विचारधाराएं ऐसी आई कि गुरु की जरूरत नहीं। सीधे जाओ। बीच में गुरु को क्यों डालते हो? ऐसी बातें कहते हैं! सीधे जा भी सकते हैं। मैंने कहा कि प्रणाम, जो जाए। लेकिन हम जैसों का क्या? खास करके मोरारिबापू का क्या? मैं अपनी बात बीच में डालता हूं, तो मुझे तो गुरु के बिना कोई चारा नहीं दिखता। गुरु चाहिए, गुरु चाहिए, गुरु चाहिए। मेरे 'मानस' में तो दो-टूक कह दिया कि बिना गुरु कोई भवसागर तैर नहीं सकता, चाहे विरंचि क्यों न हो? चाहे विष्णु क्यों न हो? चाहे कोई शिव सम क्यों न हो? गुरु चाहिए। और गुरु कोई बुद्धपुरुष के रूप में प्राप्त हो जाता है तब आदमी कितना अभय हो जाता है! लेकिन एक बात का ध्यान रखना, गुरु को कभी साधन मत बनाना। गुरु साधन नहीं है, साध्य है। कभी-कभी हम साधु को साधन बना देते हैं! साधु साधन नहीं है, साधु साध्य है। गुरु साध्य है, लक्ष्य है, मंज़िल है, आखिरी परमतत्त्व है।

गुरु के चरण की रज से नेत्रांजन बनाकर तुलसी कहते हैं, मैं रामकथा गाने जा रहा हूं। पहले मेरी दृष्टि को, मेरे नयन को शुद्ध करूं, फिर मैं बचन बोलूं। तो आंख को विवेकमयी कर दृगविवेक पैदा करके तुलसी ने कथा का आरंभ किया। तो बाप! पूरा वंदना प्रकरण चलता है। सबसे पहले पृथ्वी के देवता ब्राह्मण-भूमिसुरों को तुलसी ने प्रणाम किया। फ़िर साधुचरित की वंदना की। फिर संत समाज की वंदना की, प्रयाग के साथ उसकी तुलना की। जंगम तीरथराज कहकर तुलसी ने संतसमाज की बड़ी महिमा जो है, उसको प्रकाशित किया, उजागर किया। उसके बाद वंदना प्रकरण में सबकी वंदना खलों की, शठों की, निशिचरों की, रजनीचरों की, अच्छों की, बुरों की। क्योंकि आंख में विवेक आ गया तब बुरा दिखे कैसे?

मेरी दो-तीन बात समझ में आए तो याद रखना। इर्ष्या करने से कभी मन का सुख नहीं मिलता। सुविधा बहुत होगी आपके पास नि:शंक, कोई कमी नहीं होगी लेकिन इर्ष्या है आंख में, गुरु की कृपा नहीं पाई, दृगविवेक नहीं पाया तो इर्ष्या से कभी मन का सुख नहीं मिलता। और मुझे कहने दो, दूसरों की निंदा करने से बुद्धि कभी निर्णायक नहीं हो पाती। जो आदमी निंदक होगा, उसकी निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होगी। इर्ष्या करने से मन का सुख कभी नहीं मिलता। निंदा करने से बुद्धि कभी निर्णय नहीं कर पाती और द्वेष करने से कभी किसी को चित्त की शांति नहीं मिलती। चित्त कायम उग्र रहेगा क्योंकि द्वेष है। गुरुकृपा से दृगविवेक प्राप्त हो हमें और पूरा जगत ऐसे दिखे कि वहां कोई भेद न रहे। पूरा ब्रह्मांड ब्रह्ममय हो जाए ये गुरुकृपा का वरदान है। गोस्वामीजी ने सबको प्रणाम करते-करते माँ कौशल्या को पहले प्रणाम किया। दशरथजी महाराज की वंदना की। और उसके बाद जनकजी की वंदना करते हैं। उसके बाद सबसे पहले चारों भाईयों की वंदना की। और ऐसे पारिवारिक वंदना करते बीच में गोस्वामीजी कहते हैं-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना ।
राम जासु जस आप बखाना ।।

श्री हनुमानजी महाराज की वंदना करते हुए तुलसीदासजी कथा को आगे लिए चलते हैं। पहले दिन की कथा मेरी व्यासपीठ कायम हनुमंत वंदना तक पहुंच करके रुक जाती हैं। आईए, हम सब 'विनयपत्रिका' के इस पद द्वारा हनुंमतवंदना कर लें-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन ।
सकल अमंगल मूल-निकंदन ।।
पवनतनय संतन-हितकारी ।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी ।।

तो हनुमंतजी की वंदना गोस्वामीजी ने की। हनुमंतवंदना तो अनिवार्य है। प्राणतत्त्व है श्री हनुमानजी। हनुमंत आराधना, हनुमंत आश्रय बहन-भाई कोई भी कर सकते हैं। 'हनुमानचालीसा' का पाठ कोई भी कर सकते हैं। 'मानस' का पाठ, 'सुन्दरकांड' का पाठ बहन-भाई कोई भी कर सकते हैं। हनुमानजी की वंदना और पूजा लंका की राक्षसियां कर सकती है 'मानस' में तो मेरे देश की बहन-बेटियों का क्या कसूर हैं? श्वास लेने का अधिकार सबको हैं। हनुमान श्वास हैं, प्राणतत्त्व है, कौन इन्कार करेगा? आप हनुमान को न छू सकें लेकिन हनुमानजी चौबीस घंटों तुमको छूते हैं। तो हनुमंत एक ऐसा परमतत्त्व है मेरी दृष्टि में, उसका आश्रय करो। साधना की किसी भी पद्धति में हनुमंततत्त्व नितांत जरूरी है।

हनुमानजी से बहुत कुछ सीखने को युवानों के लिए है। मैं कल ही हनुमान जयंती के अवसर पर बोल रहा था। मेरे गुरुदेव मुझे बता रहे थे कि बेटा, सकल तो मुश्किल है लेकिन नौ भी सकल है। नौ पूर्णांक माना जाता है। हनुमान के नौ जो स्वाभाविक सद्गुण है, उसको भी कोई आत्मसात् कर ले तो कृतकृत्य हो जाए। पहला है स्वाभाविक गुण हनुमान का अभय। निर्भय नहीं, अभय। दूसरा है अजरता। उत्साह कभी क्षीण न होना अजरता है। रामकार्य में छलांग लगाने की रोज, नित नूतन स्फूर्ति ये उनकी अजरता है। अमरता, कभी भूले नहीं जाएंगे हनुमानजी। जब तक रामकथा धरती पर चलती रहेगी हनुमान विराजमान है। ये उनकी अमरता है। अभय, अजर, अमर, अखंड विश्वास ये उनका स्वाभाविक गुण है। घनीभूत वैराग्य उनका स्वाभाविक गुण है। असंगता स्वाभाविक गुण है लेकिन अनासक्ति ये विशेष स्वाभाविक गुण है। आदमी असंग तो होता है, लेकिन अनासक्त नहीं हो सकता। अंदर से आसक्ति भरपूर होती है। हनुमान असंग भी है, अनासक्त भी है। 'निर्भय प्रेम मगन हनुमाना।' हनुमानजी प्रेमस्वरूप है। और हनुमानजी शंकरावतार होने के कारण 'कर्पूरगौरं करुणावतारम्।' करुणा से भरे हुए हैं। ये नव-नव लक्षण मुझे बताये गए। फिर मैंने पूछा कि दादा, ये नव हम कैसे आत्मसात् कर सकते हैं? इसमें भी थोड़ी राहत दी जाए। फ़िर मुस्कुराते हुए कह दिया कि चलो छोडो सब, एक गुण ले लो 'नव।' नव का मतलब रोज नूतन रहना, रोज नवीन रहना। वासी मत होना। हनुमान रोज नवीन, रोज नूतन है। आदमी रोज नया होना चाहिए।

अब आप में से कोई ये पूछे मुझे कि बापू, ओर सरल करो। तो हनुमानजी का एक गुण सीख लो। बहिर्दर्शन भी करो, अंतर्दर्शन भी करो। हमें सिखाया गया बहुत अंतदर्शन करो। अच्छा है अंतर्दर्शन, ये बहुत अच्छी बात है। अंतर्दर्शन, अन्तर्मुखता बहुत आवश्यक है। लेकिन हनुमानजी ने तो हमको ये भी सिखाया कि बहिर्मुख भी हो। परमात्मा की सृष्टि बड़ी सुंदर है। बहिर्मुखता हनुमानजी की सिद्धि है। बड़े-बड़े मुनियों का मन मोह ले ऐसा जो सौन्दर्य लंका में बिखर चुका था, श्री हनुमानजी इसको विवेक दृष्टि से देखते हैं, पावन आंखों से। उसकी बहिर्मुखता ने उसके मन में कोई दूषण पैदा नहीं किया। हनुमानजी सीख देते हैं कि गुरु कृपा से दृगविवेक आ जाए और परमात्मा की जो ये शोभा बिखरी है, ये सुंदर पृथ्वी है, उसका दर्शन पाक आंखों से किया जाए। ऐसी पाक निगाह से बहिर्दर्शन दोष नहीं, ऐसा हनुमानजी ने अपने वर्तन से बताया। और अंतर्मुखता तो बाबा में है ही। तो युवानी में ये सीखे कि अंतर्मुख भी हो और पाक नजर से बहिर्दर्शन भी किया जाए। तो श्री हनुमानजी महाराज की तुलसी ने वंदना की। कथाप्रवाह में मूल प्रसंग को केन्द्र में रखते हुए, महाकाल को केन्द्र में रखते हुए आगे की चर्चा कल करेंगे।

इर्ष्या करने से कभी मन का सुख नहीं मिलता। सुविधा बहुत होगी आपके पास नि:शंक, कोई कमी नहीं होगी लेकिन इर्ष्या है आंख में, गुरु की कृपा नहीं पाई, दृगविवेक नहीं पाया तो इर्ष्या से कभी मन का सुख नहीं मिलता। और मुझे कहने दो, दूसरों की निंदा करने से बुद्धि कभी निर्णायक नहीं हो पाती। जो आदमी निंदक होगा उसकी निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होगी। इर्ष्या करने से मन का सुख कभी नहीं मिलता। निंदा करने से बुद्धि कभी निर्णय नहीं कर पाती। और द्वेष करने से कभी किसी को चित्त की शांति नहीं मिलती।

शाप के लिए क्रोध करना पड़ता है, सावधान करने के लिए बोध जरूरी है

बाप! 'मानस-महाकाल', जो इस कथा का केन्द्रबिंदु है, इसमें हम सब मिलकर भगवान महाकाल का वाणी द्वारा, श्रवण द्वारा अभिषेक कर रहे हैं। फिर एक बार वो मंज़र याद किया जाये वो काल, जब अयोध्या में अकाल पड़ा लेकिन उज्जैन में अकाल नहीं था। जहां शिव हो वहां अकाल कैसा? शिव तो है समाज के सातों विभाग का कर्णधार। जहां कर्णधार इतना महिमावंत हो। मौसम की बात छोड़िए। मौसम तो बदलते रहते हैं। तो मौसम का अकाल, दुकाल छोड़िए। जहां शिव है वहां निरंतर आध्यात्मिक गंगधारा बहती है।

स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।।
चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।।

और ये दिशा, ये प्रदेश, ये भूभाग भुशुंडि ने अपने पूर्व जीवन में देखा। यद्यपि उसमें पात्रता कम थी और वो कहते हैं, 'मानस' के 'उत्तरकांड' में कि 'हे गरुड, भयंकर कलिकाल था, अकाल हुआ था और मैं उज्जैन गया। यहां आकर मैंने एक वैदिक ब्राह्मण, जो परम साधु था उनकी शरण ली। उसने मुझे शिवमंत्र दिया। मैं शिवमंत्र का जप करता रहा। मेरी पहले से मूल निष्ठा शिव में रही। मेरे सद्गुरु हरि-हर में कोई भेद नहीं देखते थे। मैं मेरी थोड़ी अपात्रता के कारण भेदबुद्धि से साधना कर रहा था। विष्णु का तो नाम ही न लूं, लेकिन कोई वैष्णव देखूं तो मेरे गात्र जलने लगते थे! मैं द्वेष और इर्ष्या से भर जाता था! एक बार मेरे इस साधु गुरुदेव ने मुझे एकांत में बुलाकर समझाया, वत्स, शिव और हरि में कोई भेद नहीं है तो क्यों ऐसे तेरी साधना की अखंड धारा को बार-बार खंडित करता है? मेरा आचरण देखकर बार-बार मुझे वात्सल्य और प्यार से समझाते रहे लेकिन मैं न समझा, न समझा! और एक बार ऐसा हुआ गरुड-

एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।

महाकाल के मंदिर में मैं शिवनाम का, शिवमंत्र का जप कर रहा था और उसी समय मेरे गुरु, मेरे बुद्धपुरुष, मेरे सद्गुरु पधारे और मैंने देखा भी लेकिन उठकर प्रणाम नहीं किया। गुरु ने तो अपने चित्त में कुछ नहीं लिया, लेकिन शिव कुपित हो गए और मुझे शाप दिया। इस शाप से मुक्ति प्रदान करने के लिए मेरे गुरु ने महाकाल के मंदिर में 'रुद्राष्टक' का गान किया। गरुड, अभी भी मेरे कानों में गुंज रहीं है ये 'रुद्राष्टक' की हर पंक्ति; मुझे चैन से सोने नहीं देती और एक ही शूल मुझे चूभता रहता है कि 'गुरु कर कोमल सील सुभाऊ।' मेरे गुरु का स्वभाव, उसका शील कोमल था। लेकिन यहां लिखा है, 'एक बार हर मंदिर'; यहां क्यों नहीं लिखा कि एक बार महाकाल के मंदिर में मैं शिवनाम जप रहा था? हर का मतलब शिव ही है, इसमें कोई प्रश्न नहीं। हर माने शिव लेकिन 'हर मंदिर' लिखने का अभिप्राय शायद ये भी हो कि तुलसी ये कहना चाहते हैं कि हर मंदिर का एक अर्थ होता है हर एक का मंदिर।

कभी न कभी हम, हमारे जैसे लोग दिल के मंदिर में बैठे हुए किसी न किसी रूप में बुद्धपुरुष का अपमान कर रहे हैं! और मेरी समझ में ये बुद्धपुरुष है सत्य, प्रेम, करुणा। जब हम भीतरी सत्य की अवहेलना कर देते हैं तब शंभु रूठता है। जब हम भीतरी मोहब्बत की अवहेलना करते हैं, जिस पर संतों ने इतना प्रकाश डाला, ऐसे प्रेमतत्त्व का अनादर कर देते हैं, उसको अनदेखा कर देते हैं। आप भजन कर रहे हैं और जिसके दिल में जगतभर के लिए प्रेम उमड़ रहा हैं ऐसे प्रेमी को देखकर यदि आदर प्रगट न हुआ तो प्रेमरूपी बुद्धत्व का हमने अनादर कर दिया है। और प्रत्येक दिल में करुणा बसी है। शिव है सत्यमूर्ति, शिव है प्रेममूर्ति, शिव है 'कर्पूरगौरं करुणावतारम्', करुणामूर्ति। तो प्रत्येक दिल मंदिर है बाप! ये महाकाल का मंदिर हमें एक संदेश देता है कि दिल में रहे सत्य का अनादर न किया जाए। दिल में बैठा प्रेम उसका अनादर न किया जाए। और दिल में झांकने के बाद जब क्योंकि ये अगल बगल में जो और चीजें दिल में घुस गई है, संचित् कर्मों के कारण, गलत कंपनी के कारण, बुरी सोहबतों के कारण; अल्लाह जाने क्या कारण है? उसको हटाना होता है। बदायूनी का बड़ा प्यारा शे'र है छोटी बहर का कि-

पहले दिल को खाली कर।
फिर उसकी रखवाली कर।

पहले तू तेरे दिल को रिक्त कर, फिर इस रिक्तता की रक्षा कर कि कुछ और गड़बड़ अंदर घुस न जाए। पहले दिल को खाली कर, पहले शून्य हो। और जो भरा हुआ है उसकी रक्षा की कोई जरूरत नहीं है, खालीपन की रक्षा साधक को करनी होती है। मेरे गोस्वामीजी 'विनयपत्रिका' में फरमाते हैं, ये 'हृदय भवन प्रभु तोरा, जहँ आई बसे बहु चोरा।' 'हे प्रभु, ये हृदय तेरा मंदिर है।' प्रत्येक व्यक्ति का हृदय का मंदिर महाकाल का प्रसाद है। किसी भी व्यक्ति को हम मिले तब उसके दिल के सत्य को ठुकराए ना। स्वार्थ, भेदबुद्धि, मूढ़ता सत्य का इन्कार करने लगती है। व्यक्ति में रही भेदबुद्धि, व्यक्ति में रही अपनी हितप्रियता और मूढ़ता सत्य की अवगणना कर देती है। स्पर्धा से भरा चित्त प्रेम की अवगणना कर देता है। और तुलसीदासजी कितने सुंदर शब्द का विनियोग करते हैं, 'करालं महाकाल कालं कृपालं।' महाकाल जो है वो कराल है, लेकिन महाकाल का काल, महाकालेश्वर वे कृपाल हैं। मेरे भाई-बहन, हम इसी शृंखला में करुणा, प्रेम और सत्य की अवहेलना करते रहते हैं तब शिव कुपित हो जाते हैं; ऐसे समय में 'रुद्राष्टक' गाना जरूरी हो जाता है।

तो बाप! 'मानस-महाकाल' की चर्चा है। काल के कई प्रकार है। शिव महाकाल के रूप में कराल है लेकिन महाकाल के काल के रूप में, महाकालेश्वर के रूप में वो कृपालु है। अथवा तो ये परमतत्त्व कठोर भी है, कोमल भी है; दूर भी है, निकट भी है। जो ब्रह्म को लागू होता है ये सभी सूत्र यहां है। तो मेरे भाई-बहन, काल के कई विभाग है 'मानस' में भी; इनमें से हमारी चर्चा महाकाल पर केन्द्रित है। एक तो सीधा-सादा शब्द है 'काल'; काल के दो अर्थ है। काल मानी समय, जिसको हम कालगणना कहते हैं। और दूसरा अर्थ है काल मानी मृत्यु। अन्य भी कई अर्थ हो सकते हैं। 'मानस' में 'काल' शब्द का प्रयोग करते हुए मेरे गोस्वामीजी एक पंक्ति लिखते हैं-

दस सिरताहि बीस भुजदंडा रावन नाम बीर बरिबंडा।
काल पाइ मुनिसुनु सोइ राजा भयउ निसाचर सहित समाजा।।

तो काल है एक समय; कालगणना अथवा मृत्यु। अथवा तो 'काल' का शब्दकोश में एक अर्थ मिला है नियति भी। काल माने नियति। तीन वस्तु याद रखना। एक, नियति को याद रखना। पता नहीं लगता नियति क्या होती है! नियति किसको कहां लिए चलती है? भगवान कृष्ण को जब गांधारी ने शाप दिया। गांधारी के इतने पुत्र मर चुके थे और किसी भी माँ की व्यथा समझी जा सकती है। इस महाविनाश के बाद जब कृष्ण को गांधारी शाप देती है कि मेरे सामने मेरे होते हुए मेरा पूरा कुल विनाश की गर्ता में चला गया! गोविंद, तेरी उपस्थिति में तेरे कुल की भी यही हालत होगी। यहां 'मानस' में नारद का शाप ठाकुरजी ने सिर पर धारण कर लिया था कि आपने जो कहा सच हो जाएगा।

मेरी तो परमात्मा से, अस्तित्व से भी मांग रही और आपको मेरी प्रार्थना रही कि दुनिया में से ये 'शाप' शब्द निकल जाना जाहिए। क्या शाप, किसको शाप? यहां दूजा है कौन? खुद को दंडित किए जा रहे हैं! परमात्मा करे, शाप की जुबान इक्कीसवीं सदी में न रहे। शाप देने के बजाय चाहिए सावधान किया जाए। सीधा शाप कि तेरी दुर्गति हो जाए! इससे बेटर रहेगा इक्कीसवीं सदी में कि सावधान किया जाए कि तू इस रास्ते जाएगा तो तू गिर जाएगा, रुक जा। शाप न दो। शाप के लिए क्रोध करना पड़ता है, सावधान करने के लिए आदमी में बोध जरूरी है। आपने कभी देखा है, आशीर्वाद देने का उसमें बहुत बल होता है जिसके पास तीन वस्तु होती है। यज्ञ, अध्ययन और दान। तीन ही स्तंभ है, तीन ही खंभे हैं जिसको 'गीता' यज्ञ, दान, तप कह देती है। यहां तप की जगह 'अध्ययन' शब्द का प्रयोग किया 'छान्दोग्य उपनिषद' ने। अध्ययन एक प्रकार का तप ही तो है। अध्ययन बिना तप नहीं हो सकता। ये त्रिसत्य है मेरी बोली में; मैं उसको सत्य, प्रेम, करुणा कहूं। यज्ञ सत्य है। यस, यज्ञ का सगोत्रीय शब्द 'सत्य' है। क्योंकि यज्ञ में आहुति डालनी होती है। वहां वाह-वाह कम है, स्वाहा ज्यादा है। और जो सत्य का उपासक है उसको वाह-वाह कम मिलती है, आहुतियां देनी पड़ती है; उसको कुर्बानी ही देनी पड़ती है। नवाज देवबंदीसाहब का बहुत छोटा-सा शे'र है कि-

मज़ा देखा मियां सच बोलने का?
जिधर तू है उधर कोई नहीं!

सत्य के मार्ग पर अकेला जाना होगा तुम्हें। वहां तेरे साथ भीड़ नहीं मिलेगी। यज्ञ सत्य है जिसमें अहंकार का बलि देना पड़ता है। जिस यज्ञ में प्राणी का बलिदान दिया जाए वो यज्ञ सत्य नहीं रहता। उस यज्ञ की सत्य मात्रा खंडित हो जाती है। तो उसकी बानी में बहुत ताकत आ जाती है जिसके जीवन में यज्ञ हो; जिसकी बानी सत्य हो। अध्ययन मानी प्रेम। ग्रंथ से प्रेम; गुरु से प्रेम; गुरु परिवार से प्रेम; गुरुस्थान से प्रेम। आदमी गुरु महिमा समझ ले तो सब शास्त्र आ जाए साहब! हम कहां गुरुजनों को पहचान पाए? बड़ी मुश्किल यही है। या तो केवल उपर-उपर केवल बौद्धिक स्तर पर हमने गुरुओं की जांच की! फेइल हुए हैं! भगवान गोविंद को हमने 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुं' कहा है। कोई पहचान पाया गोविंद को? अष्टमी को प्रगट हुए; मनीषी लोग कहते हैं, कृष्ण को उसके काल में उसके समकालीन समय में केवल आठ लोग जान पाए थे! शिव को कितने लोग समझ पाए? शिव गुरु है। राम को कितने लोग समझ पाए? होता है वो ही का वो ही! सत्य वो ही लेकर, प्रेम वो ही लेकर, करुणा वो ही लेकर बार-बार कोई आता है लेकिन कहां हम पहचान पाते हैं? इसीलिए भक्तगण गाते हैं-

गुरु तारो पार न पायो, हे, न पायो,
प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीए...

तो बाप! उसकी बोली में ताकत होती है, जिसके जीवन में यज्ञ का सत्य है। अध्ययन प्रेम प्रगट करता है। ग्रंथप्रेम, गुरुप्रेम, गुरुस्थान का प्रेम, गुरु की हर चीज का प्रेम। ये अध्ययन, ये तप वो प्रेम है। प्रेम में तप ही तो होता है। और दान; दान को मेरी व्यासपीठ करुणा कहेगी। दान माने करुणा। बिना करुणा कोई दान कर सकता है? तो धर्म के तीन स्तंभ छान्दोग्य श्रुति ने बताए हैं। और ये तीनों स्तंभ जिसमें होते हैं उसकी वाणी विफल नहीं होती। तो युवान भाई-बहन, तीन शब्द याद रखना। एक तो 'नियति।' घटना घटती है, कोई नहीं रोक पाता। और दूसरा 'निमित्त' शब्द याद रखना कि हम सब यहां निमित्त हैं बस। जो युवानी ये 'निमित्त' शब्द को याद रखेगी उसको बहुत फायदा होगा, ऐसा मैं व्यक्तिगत रूप में मानता हूं। और तीसरा 'नेति नेति', कभी ये मत सोच लेना कि मैंने सब जान लिया!

तो, एक तो होता है काल। गोस्वामीजी का जो दर्शन है 'मानस' में, उसमें काल को बहुत स्थान देते हैं तुलसी। इनमें से हमें महाकाल का दर्शन करना है। तो 'मानस' में एक काल के बारे में तो यही दर्शन दिया है। एक काल का नाम 'रामचरित मानस' में है उसके दो नाम है; एक नाम है 'अल्पकाल' और दूसरा 'थोरे ही काल'; एक काल का नाम है अल्पकाल। कुछ घटनाएं ऐसे महापुरुष की संगति में, अल्पकाल में घट जाती है।

गुरु गृह गये पढ़न रघुराई।
अलप काल बिद्या सब पाई।।

अल्पकाल में घटना घटी है। और भुशुंडि को जो शाप मिला उसको शाप के अनुग्रह में भी, उनका शाप थोड़े काल में समाप्त हो जाए, ऐसा कुछ कर देना। अल्पकाल में घटना घटे

इसके लिए कोई ऐसे-ऐसे परम के पास रहना जरूरी है जिसको 'गीता' कहती है, 'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा।' जिसको 'रामचरित मानस' कहता है, 'करउँ सध्य तेहि साधू समाना।' एक है काल। दूसरा है अल्पकाल अथवा तो थोरे ही काल। तीसरा, हम व्यवहार में भी देखते हैं; हमारे जीवन में भी देखते हैं; हमारे जीवन में कुछ काल शुभ होता है, कुछ काल अशुभ होता है। वो चौघडिया लोग देखते हैं न पंचांग में; तो उसमे भी शुभ चौघडिया होता है, काल चौघडिया होता है, अशुभ चौघडिया होता है, उद्वेग होता है। काल के एक-दो विभाग ये भी माने गए हैं कि शुभ और अशुभ।

एक परंपरा में मृत्यु के लिए 'काल' शब्द युझ किया जाता है, कालधर्म पा गया; कालधर्म हो गया; उसने कालधर्म प्राप्त कर लिए। और तीन काल के तो हम साक्षी होते हैं; एक तो भूतकाल, जो बातें घट गई। एक वर्तमानकाल जिसमें हम गुजर रहे हैं। और एक अज्ञात, अभी आया नहीं, ऐसा एक भविष्यकाल। ये तीन काल। और गजब की बात तो वो हैं कि वर्तमान सरकता जा रहा है; निरंतर जा रहा है। ये क्षिप्राजी बह रही है तो निरंतर बहेगी। मैंने सुना संतों से कि एक ही नदी में आप दुबारा स्नान नहीं कर सकते। क्योंकि स्नान करके निकलो ही, नदी तो चली गई! वर्तमान प्रतिपल जा रहा है। अनागत का हमें पता नहीं। बहुत घोटा है हमनें भूतकाल को! एक ऐसा काल जिसको हम घुटे जा रहे; पीसे जा रहे; बार-बार उसको घोटते रहते हैं। जो भूतकाल हैं जो अब है नहीं। शास्त्र जिसको कहते हैं, अतीतानुसंधान। हमारे गुजरात में गंगासती नामक एक बुद्ध महिला हुई; देहात में रही। उसका एक गुजराती में पद है-

शीलवंत साधुने वारेवारे नमीए पानबाई,
जेना बदले नहीं व्रतमान रे;
चित्तनी वृत्ति जेनी सदाय निर्मळी,
जेने मा'राज थया मे'रबान रे...

ये बुद्ध महिला कहती है कि शीलवंत साधु को बार-बार नमो। बार-बार जहां मिले वहां चरण पकड़ना, ऐसा नहीं; ऐसी गलती मत करना। बार-बार नमो का मतलब है अंदर से बार-बार कोई शीलवंत के प्रति नतमस्तक रहो। उसके व्रत, नियम बदले नहीं ऐसा भी अर्थ होता है। और मेरी

समझ में तो आता है, 'जेना बदले नहीं व्रतमान' जो निरंतर वर्तमान में जीता है; पल-पल में जीए। तो एक तो भूतकाल। जो त्रिकाल है उसमें भूतकाल है। दूसरा वर्तमानकाल है। तीसरा अज्ञात है, खबर नहीं।

तो बाप! प्रतिपल वर्तमान की पलें जा रही है। तेरी सांसे गिनी हुई है, जा रही है, जा रही है। इस काल को संभाला जाए। तो ये तीन काल और तुलसीदासजी 'अकाल' शब्द का प्रयोग स्वयं कर रहे हैं कि अकाल हुआ था अयोध्या में। एक अकाल है; दूसरा एक सुकाल भी है। अतिवृष्टि अथवा तो अच्छी बारिश, ये सुकाल है। तो काल के कई संदर्भ मिलते हैं। इनमें से खोजते-खोजते हम इन दिनों में महाकाल के समीप बैठे हैं। महाकाल के अभिषेक के लिए हम यहां है भगवन् की इस शिबिर में। मैं कथा को प्रेमयज्ञ कहता हूं और ये प्रेमी मंडल की शिबिर है।

तो 'रुद्राष्टक' जहां प्रगट हुआ है। और भगवान करे, हम कोई कभी गुरु का अपराध न करे। हमारे दिल के सत्य का, किसीके दिल के सत्य का, प्रेम का, करुणा का अनादर न करे लेकिन हो भी जाये तो इससे मुक्त होना है तो युवान भाई-बहन, 'रुद्राष्टक' गाओ। बहुत बल मिलेगा। कोई भी धर्म, आप कोई भी संप्रदाय के हो आप मुबारक! पकड़े रहियो अपने संप्रदाय को, अपनी साधना पद्धति को। कोई चिंता नहीं। मैं युवानों के पास इतना इच्छुक हूं कि सुबह स्नान करते समय 'रुद्राष्टक' का गायन करे और रात को सोने से पहले एक बार 'हनुमानचालीसा' का गायन करे। ज्यादा करने की क्या जरूरत है? इतना ज्यादा हम कर भी क्या पाएंगे? ये साधु-संत हमारे लिए ही तो कर रहे हैं।

तो 'रुद्राष्टक' जिस भूमि में प्रगट हुआ है। कितनी फलद्रूप भूमि है ये? यहां 'रुद्राष्टक' प्रगट हुआ। लेकिन 'रुद्राष्टक' का मूल उर्ध्व है; शाखाएं हमारे तक पहुंची हैं। यही तो उर्ध्वमूल है जिसकी शाखा अध: है। 'रुद्राष्टक' सार्वभौम है। शिव के लिए पुकारा गया है, अद्भुत है, अद्भुत है। लेकिन 'रुद्राष्टक' गाते-गाते तुम्हारी आंख में आंसू आ जाए तो स्नान हो भी गया। स्नान मत छोड़ देना; स्नान भी कर लेना। वर्ना फिर वो सिर काटने जैसी बात आ जाएगी! एक-दो पंक्ति ओर गा लें-

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।
गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।
नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।

और बड़ी महत्त्व की बात इस भूमि पर ये घटी कि जिसका अपराध हुआ वो गुरु कुपित नहीं हुआ। एक गुरु ने तो अधिक करुणा की। इसका सीधा-सा अभिप्राय हो गया कि किसी भी बुद्धपुरुष का हम अपराध करते हैं तो वो कभी कुपित नहीं होते। लेकिन अस्तित्व माफ़ नहीं करता। गुरुओं को चिंता होती है कि मेरा अपराध कर रहा है; मेरे दिल में तो उनके प्रति कोई दुर्भाव पैदा ही नहीं होगा लेकिन अस्तित्व कुपित हो जाएगा तब क्या होगा? 'हाहाकार किन्ह गुरु दारुण सुनि सिव साप।' आप कल्पना तो करो कि ये बुद्धपुरुष को जब महाकाल के मंदिर में हाहाकार करना पड़ा, नहीं, नहीं, नहीं! हे भोले, हे महाकाल, नहीं, ये मेरा है! उसने मेरे से मंत्र लिया है, नासमझ है, भेदबुद्धि है, उसकी मूढ़ता गई नहीं। तो हे महादेव, मेरा भी तो कोई कसूर होगा कि मैं उसको पूरा तैयार न कर पाया!

मुझे पूछा गया था कि बापू, कागभुशुंडिजी बोलते हैं बार-बार, 'बीते कलप सात अरु बीसा।' इस आदमी की चिरंजीविता, इस आदमी की दीर्घायुता तो देखो! कहते हैं गरुड को कि गरुड, इन नीलगिरि पर्वत पर बसते-बसते सत्ताईस कल्प बीत गये। हमारा एक जनम बीतता है तो पूर्व जनम की कोई हमें याद नहीं रहती, सीधी-सी बात। बचपन में बहुत कुछ याद रहता हो। जुवानी में बहुत हम रिसीव कर सकते हो। थोड़ी उम्र आगे-आगे तो स्मृति क्षीण होने लगती है। तो फिर याद नहीं रहता। इसी जीवन में कितना-कितना भूल जाते हैं! कुछ भूलना जरूरी भी है। तुलसीदासजी ने आठवीं भक्ति संतोष कहा है न, ये केवल रूपयों-पैसों में ही संतोष की बात नहीं है। ज्यादा याद न रहे, संतोष रखो। ये भी आठवीं भक्ति है। सब कुछ याद रखने की जरूरत नहीं। एक हरिनाम याद रह जाए काफी है साहब! एक प्रभु का नाम, एक ठाकुर का नाम। आप एक सौ आठ माला न जपो तो कोई बात नहीं। एक माला जपो, संतोष। मैं मना नहीं करता लेकिन इसके कारण तुम अपने आपको गिला मत करो। 'मानस' में वहां तक लिख दिया है कि 'धन्य घडी जब होई सतसंगा।'

तो इस तरह भी घटना घट सकती है। हम भूले जा रहे हैं, स्मृति लोप होता है। धन्य है इस बुद्धपुरुष को जो कहता है कि मुझे सत्ताईस कल्प बीत गये यहां नीलगिरि में रहते-रहते लेकिन एक बात भूली नहीं जा रही। गरुड, निरंतर मेरी कथा चलती है। उसमें वृद्ध विहंग सुनने आते हैं। इनमें आप भी कभी आ जाते हैं। गत कथा मैंने क्या बोला, भूल गया, भुशुंडि कहे। फिर वो नया प्रवाह, फिर नया प्रवाह। निरंतर कथा चलती रहे। लेकिन एक बात बिसरी नहीं जा रही है! और बड़ी करुण चौपाई है ये। प्रत्येक व्यक्ति को ये पंक्ति याद रखनी चाहिए। किसी बुद्धपुरुष का यदि अपराध हो जाए; परमात्मा करे न हो कभी भी। बुद्धपुरुष कभी नहीं रोष करेगा, नहीं करेगा, नहीं करेगा। लेकिन अस्तित्व पर किसका काबू है? फिर वो ही कंट्रोल करेगा अस्तित्व को भी कि मेरा आश्रित है, उसको माफ़ करो।

एक सूल मोहि बिसर न काऊ।

क्या मतलब है इस पंक्ति का? कागभुशुंडि कहते हैं, हे गरुड, जिस महाकाल के मंदिर में मुझे शाप मिला उसके पास त्रिशूल था। लेकिन ये त्रिशूल की मुझे कोई पीड़ा नहीं। वो त्रिशूल मारकर मुझे खतम कर देता तो भी मुझे कोई पीड़ा नहीं होती क्योंकि मेरा गुरु बैठा था। ये त्रिशूल मुझे पीड़ादायक नहीं बना। लेकिन मेरे गुरु का जो कोमल स्वभाव था, बड़ा प्यारा शील था उसका। उसने मेरे लिए क्या-क्या नहीं किया? वो शूल कभी मुझसे भूला नहीं जाता। सत्ताईस कल्प बीते फिर भी ये चुभन, सदा-सदा युवा रही। हमारे गुजरात के नरसिंह मेहता का एक पद है गुजराती में। कृष्ण कालिदमन करता है। कालीय नाग की कथा, जो हमारे पुराणों की कथा है। उसमें जब कृष्ण गेंद से खेलते हैं, गेंद यमुना के कालीय नागवाले धरे में चली जाती है। और गोप बालक कहते हैं, जिसके हाथ से गई वो ले आए। और कृष्ण धरा में कूदता है। फिर कालीयनाग को जगा देते हैं कृष्ण। कालीयनाग कुपित होता है। और भगवान कृष्ण कालीयनाग को नाथ लेते हैं। उसकी फणा को मंच बनाकर कृष्ण नर्तन करते हैं। बड़ा प्यारा मंज़र है। फिर वो फुत्कारता है! परवश हो गया कालीयनाग! फिर उस कालीय नाग की पत्नियां, नागिनयां, ये सब विलाप करती है। गुजराती में लिखा है-

नागण सौ विलाप करे छे, मेली दो मारा कंथ ने।

उसके बाद की ये गुजराती पंक्ति मुझे बहुत प्रिय है। क्या कहती हैं ये कालि की पत्नियां?

अमे अपराधी कांइ न समज्या,
न ओळख्या भगवंत ने।
जल कमल छांडी जाने बाळा।

हम अपराधी कुछ नहीं समझ पाए! यही दशा मध्ये 'महाभारत' में अर्जुन की हुई! 'मानस' में जनकपुर के इस रंगभूमि में यही दशा परशुराम की हुई! परशुरामजी कहते हैं, मैंने बहुत अनुचित वक्तव्य दे दिया! हे क्षमा मंदिर राघव और रामानुज, मुझे क्षमा कर दो।

तो 'एक सूल मोहि बिसरन काऊ।' हे खगराज, हे गरुड, सत्ताईस कल्प बीते, लेकिन एक शूल, एक पीड़ा, एक चुभन, मैं बिसर नहीं पा रहा हूं। क्या?-

एक सूल मोहि बिसर न काऊ।
गुरु कर कोमल सील सुभाऊ।

चर्चा चल रही है बाप कि गुरु तो कृपालु होते हैं। शिव

> मेरी तो परमात्मा से, अस्तित्व से भी मांग रही और आपको मेरी प्रार्थना रही कि दुनिया में से ये 'शाप' शब्द निकल जाना जाहिए। क्या शाप, किसको शाप? यहां दूजा है कौन? खुद को दंडित किए जा रहे हैं! परमात्मा करे, शाप की जुबान इक्कीसवीं सदी में न रहे। शाप देने के बजाय चाहिए सावधान किया जाए। सीधा शाप कि तेरी दुर्गति हो जाए! इससे बेटर रहेगा इक्कीसवीं सदी में सावधान किया जाए कि तू इस रास्ते जाएगा तो तू गिर जाएगा, रुक जा। शाप न दो। शाप के लिए क्रोध करना पड़ता है, सावधान करने के लिए आदमी में बोध जरूरी है।

कृपालु और कठोर दोनों होते हैं। गुरु केवल और केवल कृपालु होते हैं। तो गुरु के मन में तो कभी भी रोष नहीं होगा। शाप का तो प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन अस्तित्व क्षमा नहीं कर सकता। इसलिए गुरु अपमान को महाकाल सह नहीं पाए और शाप दे दिया। तब जाके शाप निवृत्ति से ये 'रुद्राष्टक' गाया गया। तो मेरी दृष्टि में 'रुद्राष्टक' युवानों को बहुत बल प्रसाद करता है। हम भी तो बार-बार सत्य की अवहेलना करते हैं, प्रेम की अवहेलना करते हैं, करुणा की अवहेलना करते रहते हैं। बार-बार चूकें हम करते हैं। और तब जाके थोड़ा-बहुत विश्राम यदि पाना है तो 'रुद्राष्टक' का आश्रय करे।

तो भगवान शिव कर्णधार हैं। शिव त्रिभुवन गुरु है। शिव विश्वनाथ है, भुवनेश्वर है। और शिव सद्गुरु है। और तुलसी ने 'रामचरित मानस' में सद्गुरु को कर्णधार बताया है। तो जो कर्णधार हो उसका अपराध न हो। उसके लिए हमें तुलसी सावधान करते हैं। डर नहीं दिखा रहे, भय नहीं दिखाया जा रहा। शाप का तो सवाल ही नहीं। मैंने कहा, 'शाप' तो शब्द ही निकल जाना चाहिए। सावधान करना अत्यंत आवश्यक है।

तो मूल बात तो महाकाल के मंदिर का ये मंज़र, ये बड़ा पुराना दृश्य। जहां एक बुद्धपुरुष के मुख से कराल और कृपाल, महाकाल और महाकालेश्वर की स्तुति प्रगट हुई। उसको केन्द्रीय विषय बनाकर हम इस कथा में 'मानस-महाकाल' का अभिषेक कर रहे हैं। आईये, कुछ कथा का क्रम आगे ले चलूं। कल कथा के अंत में श्री हनुमानजी की वंदना का थोड़ा वर्णन यहां किया गया। उसके बाद सीता-रामजी की वंदना हुई। भगवान राम को कोटि-कोटि दुर्गा समान तुलसी ने घोषित किया है। तो ऐसा प्रभु का नाम। उसका नौ दोहे में, पूर्णांक में गोस्वामीजी महिमागान करते हैं, प्रणाम करते हैं। कुछ पंक्तियां-

बन्दउँ नाम राम रघुबर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।

तो, मेरे भाई-बहन, नाम की महिमा बहुत है। कलियुग में नाम का आश्रय करना। और यहां तो रामनाम की महिमा है, यस। लेकिन तुलसी संकीर्ण नहीं है। तुलसी का राम छोटा नहीं है। आसमां भी उसको छोटा पड़ता है। इतना उदार और विशाल तुलसी का राम है। कोई भी नाम लो। रमा का नाम लो; शक्ति का नाम लो; शिव का नाम लो, कृष्ण का नाम लो, गौरी का नाम लो। जो भी नाम लो, कोई आपत्ति नहीं है। आपकी रुचि के अनुसार आप कोई भी प्रभु का नाम पसंद करो। लेकिन नाम का आश्रय करना। सतजुग में ध्यान करने से परमात्मा की प्राप्ति होती थी। त्रेतायुग में बड़े-बड़े यज्ञ का विधान आया प्रभु की प्राप्ति के लिए। द्वापर में घंटों तक पूजा-अर्चना तब ईश्वर की प्राप्ति होती। कलियुग में केवल रामनाम एकमात्र आधार है। तो तुलसीजी ने रामनाम की महिमा स्थापित की। नाम का आश्रय; जो नाम आपको रास आये। कोई आग्रह नहीं। लेकिन रामनाम जरा सरल पड़ेगा। सब नाम उनके हैं, जरूर। मैं तो वहां तक कहूं कि कोई 'अल्लाह' बोले तो मुझे क्या चिंता है, क्या फ़िक्र है? कोई 'बुद्धं शरणं गच्छामि' करे तो क्या है? कोई 'महावीर स्वामी अंतर्यामी' कहे, क्या फ़र्क पड़ता है? लेकिन फिर भी राम मुकुट मणि है। 'बरन बिराजत दोउ।' ये दो अक्षर है, वो अद्भुत है। और सीधा सरल उपाय है राम। और बड़ी-बड़ी साधना के बाद जो प्राप्ति होती है वो रामनाम से हो जाती है।

तो मेरे भाई-बहन, जब समय मिले प्रभु का नाम, ठाकुरजी का नाम जो नाम आपको रस पड़े। मैं हर वक्त कहता हूं कि आप अपना काम पूरा करे, घर लौटे, रात को भोजन करे, कोई टी.वी.चैनल देखनी हो तो देख लो, अच्छी हो तो! कुछ पढ़ना, पढ़ लो और फिर सोते समय अब कोई काम नहीं बचा है; कुछ करना नहीं है; देख लिया, पढ़ लिया, सोच लिया सब कुछ हो गया फिर भी नींद नहीं आ रही है तो जब नींद न आये तो मधुसूदन सरस्वतीजी भगवान कहते हैं, उसी समय हरिनाम ले लो। वो समय बिगाड़ो ना। दो मिनट, पांच मिनट प्रभु का नाम, कृष्ण का नाम। तो प्रभु के नाम की बड़ी महिमा गोस्वामीजी ने ही नहीं, सब ने गाई है। वेदों में भी नाम की महिमा है। चारों युग में, चारों वेद में नाम प्रभाव किसी न किसी रूप में, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, संतों ने संकेत किये हैं। तो कुल मिलाकर हरिनाम। रामनाम की महिमा बहुत है, अतुलनीय है, सरल है। तो तुलसी ने कथा के क्रम में रामनाम की महिमा गाई।

आस्था और अवस्था दोनों भीतर की संपदा है

'मानस-महाकाल', जो इस नवदिवसीय रामकथा के प्रेमयज्ञ का केन्द्रबिंदु है। हम उसके अभिषेक के लिए या तो परिकम्मा के लिए वार्तालाप कर रहे हैं। कुछ आगे बढ़ें। मुझे भगवान महाकाल के एक पूजयनीय पूजारीजी, जो मैं परसों आया, दर्शन करने गया तो मैंने कहा था कि महाराजजी, महाकाल के बारे में आपके पास ओर कोई विशेष माहिती हो तो मुझे प्रदान करिएगा ताकि मैं भी उसके बारे में कुछ विशेष जानूं और मेरे श्रोताओं को भी विशेष रूप से कुछ कह सकूं। तो आपने कल मुझे कुछ माहिती दी थी वो मैं ले आया हूं और मैं आपको प्रसाद के रूप में आप की दी हुई प्रसादी बांट दूं। पूजारीजी ने जो मुझे शास्त्रोक्त बातें दी, उसमें कुछ बातें मेरे लिए नयी थी। बताया गया कि त्रिभुवन में, ब्रह्मांड में; पाताल, मृत्युलोक और आकाश, स्वर्ग जो कहो, उसमें तीन प्रधान शिवलिंग है। एक आकाश का शिवलिंग, दूसरा पृथ्वी का, तीसरा पाताल का। शास्त्र वचन है। 'आकाशे तारकं लिंगम्', आकाश में जो भगवान का एक शिवलिंग है तारा के रूप में। 'पाताले हाटकेश्वरम्', पाताल में जो शिवलिंग हैं उसको हाटकेश्वर कहते हैं। हाटकेश्वर भगवान से हम सौराष्ट्रवासी, गुजरातवासी ज्यादा परिचित हैं। इसीलिए कि गुजरात में और सौराष्ट्र में जो एक विशेष ब्राह्मण वर्ग है, जिसको नागर ब्राह्मण कहते हैं और जिस नागर ब्राह्मणों में नरसिंह मेहता आये हैं। और उसके ईष्ट हाटकेश्वर हैं। 'भूलो के च महाकालौ', ये पृथ्वी में, मध्य में भगवान महाकाल है। 'त्रेलिंगम् नमोस्तुते।' इन तीनों शिवलिंगों को हम प्रणाम करते हैं, नमस्कार करते हैं। ऐसा शास्त्रवचन है।

तो हम मध्यवाले शिवलिंग की परिकम्मा करने आये हैं। आकाश की तो हमारी औकात नहीं। और पाताल, बहुत गहराई की बातें हैं। साधना की इस अवस्था में भी, वहां भी, कोई अपनी औकात नहीं। मध्य में जो है, वो भगवान महाकाल हैं। तो उससे जरा ज्यादा सरलता रहती। तो ये शास्त्र आधार मुझे विशेष रूप में प्राप्त हुआ। मैं पूजारीजी का धन्यवाद करता हूं। आप जानते होंगे कि महाकाल के अतिरिक्त पांच वस्तु एक जगह मेरी जानकारी, मेरी समझ में तो कहीं भी नहीं हैं। होगी तो बहुत खुशी होगी। बहुत प्यार से उसका स्वागत है।

तो पांच वस्तु एक ही जगह हो, ये मेरी समझ और जानकारी के मुताबिक यहां है। क्षेत्र की परिभाषा ये मानी गयी कि जिस क्षेत्र में जाने से इन पापों का अपने आप विनाश होने लगता है उसी को 'क्षेत्र' कहते हैं। फिर उसको धर्मक्षेत्र कहो, जो भी कहो। ये क्षेत्र है, महाकाल क्षेत्र। तो एक तो ये क्षेत्र हैं। यहां मातृशक्ति विराजमान है। हरसिद्धि माता हैं। और जब मातृशक्ति का यहां आसन है तो ये अपने आप पीठ भी बन गया। जहां-जहां माताओं की स्थापना है अथवा तो जहां-जहां माँ का स्थान है उसको हम शक्तिपीठ कहते हैं। तो यहां माँ हरसिद्धि के कारण ये पीठ भी है। ऊसर एक क्षेत्र में भी है।

ऊसर मीन्स ऐसी जमीन जिस में तृण अंकुरित नहीं होता। वहां कितना भी अच्छा बीज बोया जाय, अंकुरित नहीं होता। महाकाल का ये जो विस्तार है इर्द-गिर्द उसको ऊसर भी कहते हैं। इसका मतलब कि यहां आने के बाद कुछ नया कोई पाप कर ही नहीं सकता। अब कलियुग है, अल्लाह जाने! कलि प्रभाव क्या करा दे मुझे खबर नहीं! लेकिन शास्त्रवचन तो ये है कि यहां एक बार आदमी क्षिप्राजी में ये पुण्यप्रवाह में स्नान कर ले, तो फिर कुछ नया यहां उगता ही नहीं।

तो ये क्षेत्र है, ये पीठ है और ऊसर भी है। चौथी वस्तु यहां विशेष रूप से ये है मेरे भाई-बहन कि उसको गुह्य कहते हैं। क्योंकि ये शिवप्रिय स्थान है। और शिव को अतिशय प्रिय होने कारण उसको गुह्य कहते हैं। नियम भी कुछ ऐसा है कि जिसको जिसके प्रति अत्यंत प्रेम होता है उसको वो ज्यादा उजागर नहीं करेगा। उसको गुप्त रखेगा। भगवान राम का संदेश जो हनुमानजी ने माँ जानकी के सामने पेश किया। तब प्रेम के बारे में कहा कि तुम्हारा और मेरा जो तत्त्वप्रेम है ये केवल मेरा मन ही जानता है। बाकी गुह्य है, गुप्त है। तो प्रेम बहुधा गुप्त होता है। यद्यपि प्रेम को छिपाया नहीं जाता लेकिन करनेवाले को चाहिए छिपाए रखे। बाकी तो प्रेम के बारे में सुना है कि आप न बोले तो आंखें बोल देगी! मुझे राज कौशिक का शे'र स्मरण में आ रहा है-

कभी रोती कभी हंसती कभी लगती शराबी-सी।
महोब्बत करनेवालों की निगाहें ओर होती है।

ओर मीन्स उसमें मोतिया बांध नहीं लगता। उसमें विशेष ओपरेशन करके नेत्रमणि बिठाना नहीं पड़ता। ये आंखें कभी अंधी नहीं हो सकती। ये आंखें दूसरों की आंखों को भी खोल सकती है।

तो मेरे भाई-बहन, गुह्य है प्रेमतत्त्व। मैं आपसे एक प्रश्न करूं मेरे भाई-बहन, कोई भी व्यक्ति अपनी बात अपने मुख से कहे वो ठीक है? शास्त्र तो मना करता हैं। उसको एक बहुत प्यारा शब्द लगा दिया 'आत्मश्लाघा।' अपना चरित्र, अपना जीवन, अपनी बातें समाज के सामने रखना, उसको अच्छा नहीं माना गया शील जगत में, सभ्य समाज में। हां, विश्वभर में महान लोग अपनी आत्मकथाएं लिखते हैं, ये एक पक्ष है। विश्ववंद्य गांधीबापू ने भी 'सत्य के प्रयोग' करके अपनी आत्मकथा दुनिया को दी। कई महापुरुष लिखते हैं। अधिकारी भी हैं, लिख सकते हैं। तो क्या साधु कभी अपना अनुभव कहे ही ना? ये संत लोग अपनी अपनी बातें क्यों करते हैं? क्या उनको कोई बड़प्पन चाहिए? भगवान शंकर ने भी अपने अनुभव कहे हैं। बाबा भुशुंडि ने भी 'मानस' में अपने अनुभव कहे हैं। ये कोई खुद अपने मुख से अपना चरित्र गाय ये ठीक तो नहीं लगता। लेकिन कहा; क्यों? साधु भी गोप्य से गोप्य रहस्य खोलने लगता हैं, जब कोई अधिकारी की प्रभुप्रीति बढ़ जाए कि मेरे कहने से उसकी ओर तरक्की हो जाएगी। और मेरे कहने से भले दुनिया कुछ भी उसका अर्थ निकाले लेकिन मेरे साधक, मेरे आश्रित के क्लेश मिट जाएंगे तो बुद्धपुरुष अपनी बातें कहने लगता है। इसीलिए कागभुशुंडि अपने प्रथम जन्म की कथा 'मानस' में 'उत्तरकांड' में कहते हैं जिसका केन्द्र महाकाल है। सत्ताईस कल्प तो उसको नीलगिरि पे रहते-रहते हो गये। उसके पहले के जन्म की कथा भुशुंडिजी कहते हैं गरुड के सामने। वहां आत्मश्लाघा का प्रश्न नहीं हैं। वर्ना भुशुंडि का ये निर्णय नहीं लगता। लेकिन बहुत उपकारक है।

मुझे तो ये भी लगता है मेरे भाई-बहन कि किसी संत का आशीर्वाद मिल जाए इस क्षेत्र में और आदमी क्षिप्रा के तट पे रात को चुपचाप बैठ जाए। अथवा तो उसकी मानसिकता बनाये बैठ जाए तो शिव स्वयं अपने गुह्य रहस्य खोलने के लिए बेताब हो जाए। क्योंकि 'गूढउ तत्त्व न साधू दुरावा।' और प्राप्ति प्रसाद से ही होती है। प्रयास से होती ही नहीं। प्रसाद छलांग लगाकर हमारे पर उतरे। हम कितने प्रयास कर सकते हैं? हमारी औकात क्या? प्रसाद हो जाए तो ये गुह्यता प्रगट होने लगती है। क्षमा करिएगा, फिर अपनी बात मत समझना लेकिन मैं जब कभी मेरे दादा की, मेरे गुरु, सद्गुरु भगवान की बातें जो मेरी स्मृति में आती है, बताता हूं तो कई मेरे श्रावक लोग कहते हैं कि बापू, दादा की बात सुनाओ, दादा की बात सुनाओ। और मैं फिर उसको क्यों सार्वजनिक करूं? मुझे क्या आपसे लेना है? लेकिन मैं इसीलिए कभी-कभी बोलता हूं कि शायद आप की गुरुपद प्रीति बढ़ जाए। हो सकता है, आपके क्लेश का शमन हो। प्रत्येक अपने-अपने बुद्धपुरुष और उनका जो आश्रित होता है, ये उन दोनों की गुफ्तगू है। उसको कैसे जाहिर की जाए? ये तो कोई महापुरुष जब पूरा अपने को उडेल देता हैं अपने शिष्य में।

निझामुद्दीन औलिया बैठें है एक बार। सायंकालीन बंदगी पूरी हो चुकी थी। रोज का एक करीब-करीब नियम था। अमीर खुशरो एक बहुत श्रीमंत था।

बहुत, कई राजाओं के साथ उसने काम किया है। बहुत कमाया है उस काल में अमीर ने। लेकिन इतना कमाने के बाद भी वो भिखारी ही रहा। अमीर तो तब बना जब निझाम की शरण में आया। आदमी अमीर कब बनता है? जब किसी बुद्धपुरुष की शरण में जाए। वर्ना तो सब कुछ होने के बाद भी आदमी भिखारी ही है! ये कभी भ्रान्ति में मत रहना कि बहुत कुछ आदमी के पास है तो वो अमीर हो गया। अमीर तो वो है जो इच्छा से मुक्त हो गया। जिसके पास कुछ नहीं वो फ़कीर नहीं। जिसके पास इच्छा ही नहीं वो फ़कीर। उपर से देखो तो फ़कीरों के पास बहुत होता हैं। दीक्षित दनकौरी की चार पंक्ति पेश करूं कि-

खुलूसे महोब्बत की खुश्बू से तर है।
चले आईये ये अजीबों का घर है।
अलग ही मज़ा है फ़कीरी का अपना,
न पाने की चिंता, न खोने का डर है।

न कुछ पाने की चिंता, न खोने का डर है। इच्छामुक्त व्यक्ति फ़कीर है। चाहे सम्राट के लिबास में क्यों न रहता हो? और सम्राट के लिबास में हो लेकिन इच्छा न गई हो तो भिखारी है! क्या पाया? हाथ में कांसा नहीं है इतना ही फ़र्क है!

मेरे भाई-बहन, यहां हम आये हैं तो चार वस्तु मिलेगी। यहां आनेवाले की दीनता जाएगी। यहां आनेवाले की मलिनता जाएगी। यहां आनेवाले की दरिद्रता जाएगी। और यहां आने के बाद दु:ख जाएगा। भुशुंडि आया था ये चार वस्तु लेकर। अयोध्या ने उसके कांसे में ये चार वस्तु डाली थी और यहां भुशुंडि को देखकर ये महाकाल ने चार वस्तु छिन ली। जब आया तब कहता है, 'दीन मलिन दरिद्र दुखारी।' ये लेकर आया था मैं उज्जैन। 'गयऊ उज्जयनि सुनु उरगारी।' संबोधन क्या किया गरुड को? मैं उज्जैन गया, हे उरगारी लेकिन तू, गरुड तू उरग का भक्षण करता है। उरग मानी सर्प। और गरुड सर्प का भक्षक है। तू उरगारी है, तू उरग का दुश्मन है। लेकिन मैं जिसके पास जा रहा हूं वो उरग का भक्षक नहीं हैं, उरग को भूषण बना रहा है; सांप का भूषण लगाकर बैठा है। मैं उसके पास जा रहा हूं। मेरे भाई-बहन, दीनता मिटानी हो, मलिनता मिटानी हो, दारिद्र मिटाना हो और दु:ख मिटाना हो तो जाओ महाकाल की शरण में। इन नौ दिन हमारे में ये चार वस्तु खतम हो। और अल्लाह करे, यहां से लौटें तो चारों से कम से कम, ज्यादा मात्रा में मुक्त होकर लौटें कि तुम्हें घर जाने के बाद देखनेवाले को लगे कि उसकी मलिनता कम हुई। उसका दारिद्र कम हुआ। उसका दु:ख कम हुआ। उसकी दीनता कम हुई।

तो ये बहुत महिमावंत वस्तु है मेरे भाई-बहन। किसको कहोगे फ़कीर? लिबास तो एक उपरी परिचय है। आस्था और अवस्था दोनों भीतर की संपदा है। किसी की आस्था और किसी की अवस्था दोनों अंदर की संपदा है। और भुशुंडि बहुत प्यारा वाक्य बोलते हैं महाकाल में कि मैं यहां आया न तो मैंने कुछ संपदा पायी; मैंने कुछ संपत्ति पायी। और फिर मैं शंभु की सेवा कर रहा था। संपत्ति जब थोड़ी होती है न तभी सेवा होती है। ज्यादा बढ़ जाती है तो सेवा भूली जाती है। पाठ पारायण भूला जाता है। जप भूला जाता है। सब कुछ खोया जाता है।

तो अमीर भिखारी था। सत्ताईस-सत्ताईस ऊंट पर उसकी संपदा लादी जाती थी। उस जमाने का ये अमीर था। नाम का था। अच्छा अमीर तो खुशरो को पूछो तब वो कहता है, मैं मेरे पीर की शरण में गया तब हुआ। और साहब, कितना प्रिय रहा होगा वो अमीर कि निझामुद्दीन औलिया कालधर्म को उपलब्ध होनेवाला था तब कहा कि मुस्लिम धर्म को, इस्लाम धर्म को कोई आपत्ति न हो तो अमीर की मजार मेरे साथ-साथ करना, मेरे साथ उसको लेटाना। बुद्धपुरुष उडेल देता है; अपना आत्मचरित कहने लगता है; यदि आश्रित की प्रभुपदप्रीति बढ़े और उसके क्लेश मिटे तो। केवल प्रशंसा प्राप्त करने हेतु, केवल आत्मश्लाघा, केवल वाह-वाह के लिए बुद्धपुरुष नहीं बोलते।

मैं कल काल की चर्चा कर रहा था। तो हमारे यहां एक प्रात:काल है। एक मध्यकाल है। एक सायंकाल है। और शास्त्र तो कहता है कि सभी काल को नियंत्रित करनेवाला यहां बैठा हुआ महाकाल है। प्रत्येक काल को जो नियंत्रित करता है उसका नाम महाकाल है। ऐसा शास्त्र विधान है।

तो अमीर बैठा है। बुद्धपुरुष के पास बैठने को मिल गया तब वो अमीर हुआ। और खुशरो उसकी सरनेम होगी कि नहीं, अल्लाह जाने! जो हो लेकिन मुझे तो लगता है कि बुद्धपुरुष ने, निझाम ने सिर पर हाथ रखकर कहा होगा कि बेटा, खुश रहो, तब से वो खुशरो हो गया होगा। ये तो मैं अपने ढंग से ऐसा सोचता हूं। बाकी तो उनका नाम अमीर खुशरो, जो रहा होगा। लेकिन सच्चा अमीर तो तब बना जब बाबा ने उसको अपनी बगल में बैठाया और जब उनके मुंह से निकल गया होगा कि बच्चा, खुश रहो; सदा खुश रहो; सदा प्रसन्न रहो। और जगद्गुरु आदि शंकराचार्य

ने कहा है कि प्रसन्नता ही मुक्ति का दरवाजा है। परमात्मा के दर्शन का यदि कोई सरल और बहुत बड़ा द्वार है तो ये प्रसन्न चित्त है। और धर्मों ने प्रसन्न रहना मना सिखा दिया! तुम ज्यादा एन्जोय करो तो धर्म मना करता है! तुम गाओ तो धर्म मना करता है! तुम नाचो तो खबर नहीं, क्या-क्या कर देगा! प्रसन्न रहो। मैं कभी नहीं कहता, एकाग्रता से सुनो। मैं इतना ही कहूं कि प्रसन्नता से सुनो। एकाग्रता तो लानी बहुत मुश्किल है साहब! मेरी व्यासपीठ तो निमंत्रण देकर इतनी ही प्रार्थना करती है कि प्रसन्नता से सुनो। आदमी प्रसन्न रहे। प्रसन्नता हमारा अधिकार है।

तो गुह्य से गुह्य बात बुद्धपुरुष बता देता है। अपना चरित्र बता देता है। वहां तक बुद्धपुरुषों ने काम किया है कि अपने आश्रित को अपने जन्म-जन्म की कथा बता देते हैं कि मैं पहले ये था, मैं पहले ये था। जब कोई अधिकारी मिलता है तो किताब खोल देता है। तो इस प्रदेश को गुह्य कहा है शिवप्रिय होने के नाते। ये शिवप्रिय प्रदेश है इसीलिए गुह्य है। और पांचवां ऐसा माना जाता है कि यहां भूतों का वास है। डरना मत। यहां बहुत भूत-प्रेत है। मुझे ऐसी बात करनी चाहिए कि नहीं करनी चाहिए? कहीं आप डर न जाएं। अब इतने डर है तो भूतों से क्या डरेंगे यार खाक! लोग घर से ही इतने डरे हुए हैं! और बहादुर तो हम बहार से दिखाते हैं। बाकी असल में सब डरे हुए हैं। हम निर्भय है, अभय नहीं हैं। अभय तो गुरुपद पंकज में मिलता है। सच्चा अभय किसी बुद्धपुरुष की शरण में ही प्राप्त होता है। इसके अलावा कहीं नहीं प्राप्त होता। प्रार्थना करना आपके स्वभाव में हैं तो प्रार्थना ऐसी करो कि हमें इसी जीवन में कोई बुद्धपुरुष मिल जाए जिसके विरह में हरि, तेरी आंख में भी आंसू आ जाते हो; ऐसा कोई पहुंचा हुआ फकीर मिले। कोई ऐसा बुद्धपुरुष जिसके पास अभय मिलता है। ये एक ही बार और अंतिम बार जो शरणागति है, वो आदमी को अभय कर देती है। पांचवां, यहां भूत-प्रेत होने कारण महाकाल के एक योजन पर्यन्त प्रदेश को स्मशान कहा है। स्मशान है; ये महामसान है-

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचा: सहचरा-
श्चिताभस्मालेप: स्रगपि नृकरोटीपरिकर:।
अमङ्गल्यं शीलं: तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि।।

महास्मशान के निवासी हैं महाकाल। शिव का स्थान स्मशान माना गया है। मदनभैया कह रहा था, बापू, एक कथा 'मानस-स्मशान' हो जाये! और मैं करूंगा। अल्लाह ने साथ दिया तो 'मानस-मसान'; 'घर मसान जनु परिजन भूता।' मेरे तुलसी कहते हैं। महास्मशान में करेंगे। और महास्मशान वाराणसी, काशी को भी माना जाता है महास्मशान; इधर मणिकर्णिका घाट पर चिताएं जलती हो और उस तट पर व्यासपीठ 'मानस' गाती हो, जलती चिताओं को देखदेखके! यदि परमात्मा ने चाहा तो होगा। कब हो, कैसे हो ये मुझे कुछ पता नहीं। लेकिन सब्जेक्ट तो अच्छा है।

तो पूज्य पूजारीजी ने जो मुझे माहिती दी इसमें 'तारकं लिंगं पाताले हाटकेश्वं भूलोके च महाकालौ लिंगत्रय नमोस्तुते।' तो ये मध्य में महाकाल है। पृथ्वी के अथवा तो भारत के भी मध्य में, मध्यप्रदेश में, मालवा में ये महाकाल बिराजमान है। हमारी बोडी जो है, हमारा शरीर

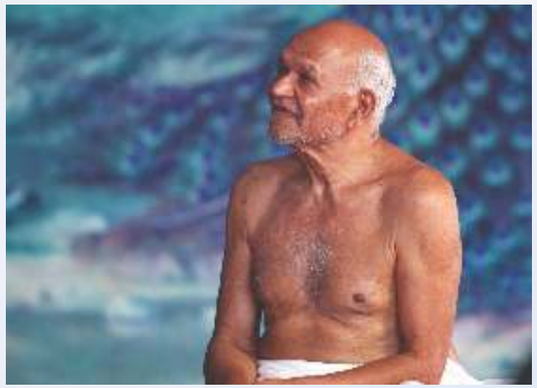

है उसका मध्य भाग नाभि माना जाता है। शरीर का जो शास्त्रीय प्रमाण है उसमें नाभि मध्य बिंदु माना गया है। पूजारीजी ने जो मुझे माहिती दी इसमें लिखा है, 'नाभिदेशे महाकाल।' ये पृथ्वी में है, मध्यप्रदेश में है, नाभि में है। तो 'नाभि देशे महाकाल स्तन्नामना तत्रवयी हर:।' तैतरिय उपनिषद का भी थोड़ा आश्रय यहां मुझे दिखता है कि वहां ये महाकाल है जो नाभि प्रदेश माना गया। 'कालंचक्रं प्रवर्तको महाकाल: प्रताप:।' महाकाल बहुत प्रतापी है। सभी काल का नियंत्रण-संचालन महाकाल के थ्रू होता है; महाकाल द्वारा होता है।

तो 'मानस-महाकाल' की हम पूजा कर रहे हैं। वाङ्मय पूजा है आपके साथ बातचीत करते हुए लेकिन मूल बातें जो मैं आपसे करना चाहता हूं वो ये हैं कि गरुड ने कुल मिलाकर 'रामचरित मानस' में 'उत्तरकांड' में बारह प्रश्न पूछे हैं। हमारे यहां ज्योतिर्लिंग बारह है। हमारे यहां मास भी बारह है। तो गरुड ने कुल बारह प्रश्न पूछे। पूर्व पक्ष में पांच प्रश्न पूछे। फिर जब समाधान पूरा का पूरा हो गया, उसके बाद संकेतात्मक है। और कुंडलिनी के भाव भी तो, मेरा तो ये क्षेत्र नहीं लेकिन बारह ही तो गिनाये गये हैं। कुछ जिज्ञासावश मैंने ऐसे-ऐसे पन्नें देखे हैं जरूर कि इसमें क्या-क्या हैं? हमारी तो औकात नहीं कि उसमें जाएं और आप भी हरिनाम लो बस। ज्यादा कठिन, जटिल साधना में मत जाना। कहीं उलझ जायेंगे और उसको सुलझाना बड़ा मुश्किल भी है। जो सुलझाने गये, खुद उलझ गये! पारशा जयपुरी का शे'र है-

उलझनों में खूद ऊलझकर रह गए वो बदनसीब,
जो तेरी ऊलझी हुई झुल्फों को सुलझाने गए।

इन रहस्यों को जो सुलझाने गये वो खुद उलझकर रह गये। वहां 'नेति' ही 'नेति' आया है। लेकिन कुंडलिनी के भाव एक मतानुसार बारह माने गये। यहां तो हर प्रकार की साधना हुई है। ये भूमि बहुत साधना की भूमि है। यहां तंत्र है, यहां मंत्र है। अल्लाह जाने क्या-क्या है! यहां बाबा भैरव है। यहां माँ है। महास्मशान, बहुत भारी स्मशान माना जाता है यहां का स्मशान। यहां का वट भी बहुत प्रसिद्ध है। बैताल और वट की जो बातें हैं। ये अवंति है; मोक्ष दायिका नगरी है। क्षिप्रा का तट भी महिमावंत यहां माना गया है। विक्रमादित्य का स्मरण होता है। और सबसे ज्यादा स्मरण तो मुझे महाकवि कालिदास का होना स्वाभाविक है। शब्द का एक बादशाह इस भूमि का है। और महाकाल का वर्णन जो 'मेघदूत' में भी किये बिना नहीं रह पाया। और शिवमंगलसिंह 'सुमन' यहां के इतने बड़े कवि! आप जब परिचय देते थे अपना तब मुशायरा में कहते थे कि 'मैं क्षिप्रा-सा सरल तरल बहता हूं, मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूं।' दादागीरी तो देखो यार कवि की, सर्जक की! उसका स्वातंत्र्य देखो! धन्य है।

मैं क्षिप्रा सा सरल तरल बहता हूं।
मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूं।
मुझको तो मौत डरा नहीं सकती,
मैं महाकाल की नगरी में रहता हूं।।

मुझको तो मौत भी डरा नहीं सकती, मैं महाकाल की नगरी में रहता हूं। मैं क्षिप्रा-सा सरल-तरल बहता हूं। क्या ऊंचाई थी शिवमंगल सुमनसाहब की! कविता भी इतनी ऊंची रही।

तो यहां का जो प्रदेश है, साधना का प्रदेश माना गया है। और आप इस भूमि की गरिमा को सोचो महाकाल की साहब! पूर्णावतार कृष्ण की पढ़ाई यहां हुई। सांदीपनि के आश्रम में वो विद्या प्राप्त करने के लिए यहां आये। तो इस महिमावंत भूमि है। यहां दीनता को समाप्त करने के सूत्र मिलेंगे। यहां मलिनता से मुक्त होने के बीज मिलेंगे। यहां दारिद्र समाप्त होने के बीज प्राप्त होते हैं। और यहां दु:ख से निवृत्ति के कुछ न कुछ संकेत प्राप्त होते हैं। ये चार वस्तु को नष्ट करनेवाली ये भूमि।

तो पांच प्रश्न गरुड ने पूछे थे पहले। अब तो गरुड कागभुशुंडि को पहचान गया है; जान गया है तो पूछता है। बड़े प्यारे प्रश्न है, साहब! पहला प्रश्न है, आपको कौए का शरीर कैसे मिला? दूसरा प्रश्न है, आप शाश्वत क्यों है? इच्छामरण क्यों है? आपकी शाश्वतता का राज़ क्या है? एक और प्रश्न है कि 'रामचरित मानस' आपने कहां से प्राप्त किया ये बताओ। जो परमहंसों को दुर्लभ है वो कौआ कैसे प्राप्त कर गया? चौथा शाश्वतता और काल के संदर्भ में पूछा है कि आपसे काल डरता क्यों है? आपसे काल भयभीत क्यों रहता है? और पांचवां प्रश्न तो इससे भी मधुर और हमारे लिए बहुत प्यारा प्रश्न है कि आप के आश्रम में आते ही मोह, भ्रम, संदेह, अंदर की बुराईयां सब भागने क्यों लगती हैं? क्यों मैं इतना पवित्र हो जाता हूं? ये पांच प्रश्नों के उत्तर मुझे बताईये। तब बुद्धपुरुष अपना

चरित्र गाने लगा। और फिर कहते हैं कि मेरे प्रथम जन्म में एक ऐसा कलियुग था; ऐसा कलियुग कभी मैंने देखा नहीं।

पहली वस्तु ये कलियुग की वो थी कि बिलकुल मल का मूल था। प्रत्येक स्त्री-पुरुष अधर्मरत थे। सब वेद से प्रतिकूल हो गये थे। ऐसा भयंकर कलियुग। उसके बाद वो कहते हैं कि फिर उसी समय मेरा अयोध्या में शूद्र तनु, मेरा जन्म था। और मेरी ऐसी स्थिति थी। मैं दीन था। यहां दीनता मानी सब मुझे तिरस्कृत करते थे। मुझे सब धक्का देते थे। मैं मलिन था। मैंने नहाना-धोना सब बंद कर दिया था। इतनी सरजू बहती थी, मैं नहाता नहीं! मलिन था। अंतर्बाह्य मेरी मलिनता थी। और ऐसी दशा होते हुए मैं अयोध्या में रहा। मेरी स्थान निष्ठा रही अयोध्या में कि भले दीनता रही कुछ भी हो लेकिन मैं अवध न छोडूं। लेकिन बहुत काल पड़ा, भयंकर अकाल। और अकाल के कारण फिर मुझे लगा कि मैं ये देश छोडूं। कोई ऐसे मूलक में जाऊं जहां मेरी दीनता निकल जाए। जहां मेरी मलिनता छूट जाए। अब दीनता, मलिनता, दरिद्रता और दु:ख इन चार के कारण भुशुंडि बताते हैं कि मेरी स्थिति का कारण क्या था? 'आन देव निंदक अभिमानी।' पूर्व पंक्ति में, अर्धाली में भुशुंडि कहते हैं, मैं शिव का मन, कर्म और वचन से उपासक था। लेकिन इतना ही दूसरे देवों का मन, कर्म, वचन से निंदक था। दोनों जगह मन, कर्म, वचन मैंने लगाये थे। मेरे मन में शिवसेवा भरपूर। मेरी वाणी में शिव के स्तोत्र भरपूर। मेरे कर्म, शिव के अभिषेक के लिए मेरी कर्मेन्द्रिय सदैव व्यस्त रहती थी। लेकिन ये तीनों मन से, कर्म से और वाणी से अन्य देवों का इतना ही निंदक था। दोनों जगह मेरी पूरी उर्जा खर्ची जा रही थी। लेकिन भुशुंडि कहते हैं, मुझे आन देव जरा भी पसंद नहीं। मैं उसका काटनेवाला कि विष्णु कौन है? किसी को मैं मानता नहीं। मेरे भाई-बहन, व्यक्ति की दीनता का एक कारण है मानव की निंदा करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति। हम ईश्वर के अंश हैं फिर भी हम दीन क्यों है? क्योंकि हम निंदा करते हैं।

मुझे कभी किसी ने पूछा था कि निंदा और इर्ष्या में फ़र्क क्या है? इर्ष्या मन में होती है और निंदा प्रगट होने लगती है। अपशब्दों में आ जाती है, गाली-गलौचो में आ जाती है; अपमानित शब्दों में आ जाती है। मैं तो इतना ही कहके आगे बढ़ूं कि भाई, ये दुनिया तो निंदा करती रहेगी लेकिन कम से कम कथा सुनते हैं वो एक-दूसरे की निंदा न करे तो विश्व का पर्यावरण सुधारने में बहुत बड़ा योगदान होगा। जो सुनते हैं वो तो न करे! सुनते हैं उसको छोड़ो, साथ-साथ घूमते हैं वो एक-दूसरे की निंदा न करे! आप सोचिए, हमारी दीनता का कारण क्या है? हम सम्राट की संतान, हम अमृत के पुत्र फिर भी हम इतने दीन क्यों हैं? क्योंकि निंदा छूटती नहीं। साहित्य के नौ रस है। फिर एक और रस भी उसमें डाला जाता है भक्तिरस, प्रेमरस जो कहो। बाकी साहित्य का नौ रस है। और भोजन के छ: रस है। बाकी संतों से मैंने सुना कि एक बहुत सबसे प्यारा रस है, जो आदमी छोड़ना ही नहीं चाहता वो है निंदारस। अब कुछ लोग दूसरों की निंदा नहीं करते तो खुद की निंदा करते हैं! ये शरीर बस वो है, इसमें बस मल-मूत्र भरे हैं! ये नाशवंत है, ये फलां है! इस शरीर की निंदा मत करो। शरीर महिमावंत है। खुद की निंदा न करो।

आईये, अब जो कुछ समय बचा है इसमें थोड़ा कथा का क्रम संभालूं। कल हम रामनाम महाराज की वंदना और महिमा का गायन कर रहे थे कि कलियुग में हरिनाम, रामनाम एक सरल, सुलभ, सर्वसुलभ मार्ग है। उसके बाद कथा के क्रम में 'रामचरित मानस' के प्रागट्य की कथा लिखी है कि सबसे पहले भगवान शिव ने इस 'मानस' की रचना की और अपने मानस में रखा, हृदय में रखा। योग्य समय आने पर ये कथा पार्वती के सामने हृदय में गाई। उसी रामकथा कागभुशुंडि को शिव ने दी। और भगवान शिव से पाई रामकथा भुशुंडि ने गरुड के प्रति गाई ये शिखर पर कथा। कैलास पर शिव ने भवानी को दी। एक दूसरे नीलगिरि पर्वत पर बाबा भुशुंडि ने गरुड को सुनाई। फिर ये कथा बिलकुल धरा पर आ गई। और तीरथराज प्रयाग में परम विवेकी याज्ञवल्क्य महाराज के पास ये कथा आई। और उसने भरद्वाजजी को ये कथा सुनाई। तुलसीजी कहते हैं कि फिर मेरे गुरु के कदमों में बैठकर मैंने ये कथा सुनी। मेरे गुरु ने मुझे बार-बार ये कथा सुनाई तब बुद्धि में कुछ बात बैठी। बाप! जो लोग कहते हैं बार-बार कथा सुनने का क्या अर्थ है? एक बार सुन लिया। एक बात तो ये है कि कथा हर वक्त नई होती है। कथा का अपना करिश्मा है। जैसे क्षिप्रा, ये पुण्य प्रवाह रोज नया लगता है। जैसे सूरज रोज नया लगता है। वैसे भगवान की कथा रोज नई होती है। हमारा तो बिलकुल अनुभव हो चुका है। आप भी अनुभव करते होंगे कि परमात्मा की कथा रोज नयी लगती है। सूत्र रोज नये दिखते हैं। ये केवल एक कहानी नहीं है।

एक युनिवर्सिटी में मुझे बोलने के लिए बुलाया गया। उसका विषय था कथा और वार्ता। कहानी और कथा आदि-आदि उसका विषय था। तो कथाजगत में स्वाभाविक बापू कथा कहते हैं तो उसको बुलाओ। तो जो मुख्य थे वी.सी. उसने प्रवचन में कहा कि बापू कथा की कहानी सुनाते हैं। पहले हमारे बुजुर्ग लोग, बूढ़ी मातायें बच्चों को कहानी सुनाती थी और बच्चे सो जाते थे। बापू भी यही काम करते हैं। मैंने कहा, हद है! मुझे यहां चीफ गेस्ट के रूप में बुलाया है और ये कह रहा है, बापू कथा करते हैं और यही कहानी कहते हैं! तो उसने अपना वक्तव्य पूरा किया। आखिर में मैंने कहा, साहब, पहले तो क्षमा करिएगा आप को बुरा लगे तो लेकिन कहानी सुला देती है, कथा जगा देती है। ये आप मत भूलिएगा। ये सुलाने की कथा नहीं है। रोज नया जागरण देनेवाली है। मुझे तो रोज नई लगती है। मुझे तो रोज नया आनंद आता है। इससे प्रतीत होता है कि कथा रोज नई होती है। लोग आलोचनात्मक रूप से कहते हैं कि एक ही कथा, एक ही बोलनेवाला, वो ही सुननेवाले, ये क्या पागलपन हैं! लेकिन कथा बार-बार सुननी पड़ेगी तब जाके कभी कुछ पकड़ में आयेगा। तो गोस्वामीजी ने शिव संकल्प किया, मैं इस कथा को भाषाबद्ध करूं। क्यों? 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई।' मेरे मन को प्रबोध हो।

मानस में सबसे पहले तो शिव ने ही लिखा। लेकिन इसी परंपरा में तुलसी ने भाषाबद्ध किया और विक्रम संवत् सोलह सौ इकतीस की रामनवमी के दिन उसका प्रकाशन हुआ। तुलसीदासजी ने इस 'रामचरित मानस' को मानसरोवर का एक सुंदर रूपक बनाया। और सरोवर के जैसे चार घाट होते हैं वैसे घाट बनाये। एक को ज्ञानघाट कहा, जहां शिवजी बैठ के पार्वती को सुनाते हैं। दूसरा उपासना घाट, जहां कागभुशुंडि गरुड को सुनाते हैं। तीसरा कर्म का घाट, जहां याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी को सुनाते हैं। चौथा प्रपत्तिघाट। ये नाम मैंने सबसे पहले पंडित रामकिंकरजी महाराज से सुने। और एक बार प्रयाग का कुंभमेला; कल्पवास करके महात्मागण विदा ले रहे थे। याज्ञवल्क्य नाम के महात्मा ने विदा मागी तब भरद्वाजजी ने उसको रोक रखा, बाबा, मेरे मन में एक जिज्ञासा है कि रामतत्त्व क्या है?

तो पहले तुलसी ने शुरू किया शरणागति के घाट से। फिर कर्म के घाट पर याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज को कथा सुनाने के लिए प्रसन्नता से आगे बढ़े। पूछा था राम के बारे में और याज्ञवल्क्य ने कथा का आरंभ शिवतत्त्व से किया। ये भी एक समन्वय था। ये भी एक सेतु था अथवा तो राम को जानना है तो शिवसाधना जरूरी है। भगवान शिव को बिना जाने, शिवचरित्र को श्रद्धा से सुने बिना रामकथा तक कैसे पहुंच पाओगे? बहुत प्यारा समन्वय। तो याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी को शिवचरित्र सुनाते हैं। एक बार के त्रेतायुग में भगवान शिव कुंभज के पास जाते हैं कथा सुनने के लिए। सती भी जाती हैं। और कुंभज स्वागत करते हैं। शिवजी तो संत की उदारता को बहुत दिल से आदर देने लगे। लेकिन सती कुंभज की इस पूजा का गलत अर्थ करने लगी कि ये महात्मा क्या कथा सुनाएगा? हम आये और हमारी पूजा करने लगा! सती दक्ष की कन्या है, बुद्धिप्रधान है, इसीलिए उसने ऐसा अर्थ निकाला। शिवजी ने कथा सुनी। सती भी साथ में बैठी लेकिन सुनी नहीं! कथा में बैठना पर्याप्त नहीं है, जागृति भी जरूरी है। कथा पूरी हुई। शंकर ने अधिकारी समझकर कुंभज को भक्ति का वरदान दिया। उसके बाद मुनि से बिदा मांगी और फिर यात्रा करते हैं कैलास की। दंडकारण्य से निकलते हैं। बीच में उसको उसी त्रेतायुग की रामलीला जो वर्तमान थी और भगवान राम नरलीला कर रहे थे। सीता का अपहरण हो चुका था। राम वियोगी के रूप में रो रहे थे सीता के लिए। उसी समय शिव-सती यहां से निकलते हैं। और फिर सती को संशय होता है, आदि-आदि बातें हम कल करेंगे।

> जिसके पास कुछ नहीं वो फ़कीर नहीं। जिसके पास इच्छा ही नहीं वो फ़कीर। उपर से देखो तो फ़कीरों के पास बहुत होता हैं। इच्छामुक्त व्यक्ति फ़कीर है। चाहे सम्राट के लिबास में क्यों न रहता हो? और सम्राट के लिबास में हो लेकिन इच्छा न गई हो तो भिखारी है! क्या पाया? हाथ में कांसा नहीं है इतना ही फ़र्क है! किसको कहोगे फ़कीर? लिबास तो एक उपरी परिचय है। आस्था और अवस्था दोनों भीतर की संपदा है। किसी की आस्था और किसी की अवस्था दोनों अंदर की संपदा है।

मानस-महाकाल ४

संत, हनुमंत और भगवंत एक आध्यात्मिक त्रिकोण है

बाप! आईए, महाकाल के मंदिर में संतों का आशीर्वाद लेकर प्रवेश करें। कागभुशुंडि गरुड को अपना पूर्व जन्म सुना रहे हैं। कथा का प्रसंग जो कहता है कि उस समय अयोध्या में अकाल पड़ा। अयोध्या मोक्षनगरी है। और अवंतिका भी मोक्षपुरी है। और भुशुंडिजी कहते हैं कि गरुड, मैं उज्जैन गया। मेरे एक श्रोता ने प्रश्न पूछा है कि बापू, उज्जैन में अकाल नहीं था क्या? अकाल कहीं भी हो सकता है जिसको हम अकाल कहते हैं, पानी की तंगी होती है आदि-आदि जो होता है। लेकिन मुझे लगता है कि उज्जैन में कुछ वस्तु का अकाल कभी नहीं हुआ। और जहां तक महाकाल के प्रति मेरी श्रद्धा है, मेरी श्रद्धा कहना चाहेगी कि न कभी होगा। एक, उज्जैन में कभी श्रद्धा का अकाल नहीं होगा। यहां की श्रद्धा मैं जन-जन में देख रहा हूं। तो यहां श्रद्धा का कभी अकाल नहीं हुआ ऐसा मेरी तलगाजरडी आंखों को दिखता है। और सबसे बड़ा अकाल है, जब श्रद्धा का अकाल हो जाये। आचार्य चरण तो फरमाते हैं, 'आदौ श्रद्धा।' सबसे पहले श्रद्धा होती है। 'रामचरित मानस' के 'उत्तरकांड' में जब ज्ञानदीप की चर्चा भुशुंडि ने शुरू की तब वो कहते हैं कि ज्ञानदीप यदि प्रज्वलित करना है तो सबसे पहले जरूरत पड़ेगी श्रद्धा की।

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।

आप जानते हैं, 'भगवद्गीता' पढ़ते हैं, हम भी पढ़ते हैं, स्वाध्याय करते हैं। उसमें तीन प्रकार की श्रद्धा की बात आई, 'त्रिविधा भवति श्रद्धा', लेकिन परमात्मा से प्रार्थना की जाये कि हमारी गुणातीत श्रद्धा का कभी अकाल न हो। गुणातीत श्रद्धा का पहला लक्षण है, जिसमें गुणातीत श्रद्धा होगी उसकी आंखों में गर्व नहीं होगा; आंखें भीगी होगी। तेज दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के गर्व का भी तेज होता है किसी-किसी की आंख में। किसी-किसी की आंखों में साधना की गहराई का भी तेज होता है। कागभुशुंडि में शिव के प्रति तो गजब की श्रद्धा है। लेकिन 'आन देव निंदक अभिमानी।' इसकी आंख में कहीं गर्व है। आंख नमी नहीं है। नमी तो बाद में हुई साहब! तो इस मालवा में, इस महाकाल की नगरी में, ये नाभि प्रदेश में श्रद्धा का अकाल नहीं हुआ। अल्लाह करे, कभी न हो। दूसरा, इस भूमि पर कभी विद्या का अकाल नहीं हुआ। कितनी विद्या से बलवत्तर रही होगी ये भूमि और है कि जहां अभी-अभी जिक्र हुआ कि उज्जैन का ऋण है कुरुक्षेत्र पर। हरियाणा के आदरणीय मुख्यमंत्रीसाहब बोल गये। भगवान पूर्णावतार श्रीकृष्ण यहां पढ़े हैं। एक मुद्दे पर मालवा गौरव से

अपने सिर को उन्नत रख सकता है। यहां विद्या का कभी अकाल नहीं हुआ साहब! तीसरा, यहां महाकाल के प्रदेश में मंत्र का कभी अकाल नहीं हुआ। और कहने दो, तंत्र का भी कभी अकाल नहीं हुआ। यहां वैराग का कभी अकाल नहीं हुआ। और कहने दो, यहां शृंगार का भी कभी अकाल नहीं हुआ। इस भूमि ने दिया 'शृंगार शतक', 'वैराग्य शतक।' न तंत्र का अकाल, न मंत्र का अकाल, न विद्या का अकाल और मुझे कहने दो कि इस भूमि पर बुद्धपुरुष का कभी अकाल नहीं हुआ। कभी न कभी बुद्धपुरुष यहां आये। और हमें न दिखे तो महाकाल देखता है।

तुम्ह त्रिभुवन गुरु बेद बखाना।
आन जीव पाँवार का जाना।।

आप कल्पना करो, अयोध्या से वो निकले तो कितने प्रदेश, कितने नगर रहे होंगे? कहीं न गये और उज्जैन क्यों आये? उज्जैन ने शायद बुलावा भेजा कि तेरी दीनता खतम करनी है, तेरी मलिनता खतम करनी है, तेरे दारिद्र को समाप्त करना है और तेरे दु:ख नष्ट करना है तो उज्जैन आ। और हम भी इसीलिए उज्जैन आये हैं कि परमात्मा करे हमारी दीनता, हमारी मलिनता, हमारा दारिद्र, हमारा दु:ख मिटे। और इस आदमी का चारों मिटा।

गयऊ उजयनी सुनु उरगारी।
दीन मलिन दरिद्र दुखारी।।

कागभुशुंडि अपना जीवन बताते हुए बोले कि गरुड, मैं उज्जैन गया। मैं कैसा था? 'दीन मलिन दरिद्र दुखारी।' ये चार वस्तु पे ध्यान दे मेरे श्रोता भाई-बहन। उज्जैन में आने के बाद कागभुशुंडि की दीनता मिट गई साहब! वो कहते हैं अपनी जीवन की यात्रा का वर्णन करते हुए कि फिर तो मेरा ब्राह्मण के घर जन्म हुआ। फिर राम में लयलीन रहा। एक लोमस महात्मा मुझे मिले। उसने मुझे निर्गुण की बातें की। ये हुआ, ये हुआ। फिर उसने शाप भी दिया। मुझमें कोई दीनता न आई क्योंकि उज्जैन ने मेरी दीनता को नेस्तनाबूद कर दिया था। लेकिन दीनता कहे किसको? ध्यान देना मेरे भाई-बहन, दीनता का संबंध मन के साथ है। मलिनता का संबंध मानवी की बुद्धि के साथ है अथवा नयन के साथ है। ज्यादातर नयन के साथ। दरिद्रता का संबंध धन के साथ है और दु:ख का संबंध मानवी के शरीर के साथ, तन के साथ है। हमारी दीनता का संबंध मन के साथ जुड़ा हुआ है। तुलसीदासजी अपने पूरे जीवन दर्शन में जिस दीनता की बात करते हैं, वो दीनता तो प्रभु के शरण की दीनता है। वो तो एक अद्भुत अवस्था है। वो दीनता कायम रहे। लेकिन संसार के सामने दीनता; संसार के सामने हम घुटने टेकते हैं। संसार के किसी प्रभाव को देखकर हम उसके आधीन होने के लिए बेताब हो जाए। ये दीनता मिटी उज्जैन में। हम निम्न है, हम कमजोर है, ये कितना महान, ये जो मन का व्यापार है। ये दीनता मन से संलग्न है। मेरी समझ में आता है गुरुकृपा से कि मलिनता का संबंध अपने नयन से है और इसीलिए गोस्वामीजी 'मानस' के पहले ही प्रकरण में कहते हैं कि किसी गुरु की चरणधूलि से इस नेत्र की मलिनता को नष्ट किया जाये।

तेहि करि बिमल बिवेक बिलोचन।
बरनउं रामचरित भव मोचन।।

हमारी मलिनता हमारी आंख में है ऐसा लगता है। और इसीलिए ये मन किसी बुद्धपुरुष की चरणरज से विमल हो। और नयन की मलिनता के कारण, नेत्र की मलिनता के कारण कभी-कभी हमें बुद्धपुरुषों में भी दोष दिखते हैं। मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा कि हम जैसे लोग, जो किसी न किसी बुद्धपुरुष के आश्रित है; और आश्रित लोगों में जितने दोष होते हैं वो सब भुशुंडि में है। और आश्रित के सभी गुनाह माफ़ करनेवाला बुद्धपुरुष, इसमें जितने सद्गुण होने चाहिए ये सब इस ब्राह्मण देवता में हैं। ये दो शिखर है यहां महाकाल के मंदिर में। एक ओर शिष्य की निम्नता का ढेर है। एक ओर गुरु की कृपालुता की ऊंचाई है। ये दोनों के बीच की घटना काश हमारे जीवन से दीनता और मलिनता का नाश करे।

'रामचरित मानस' के इस प्रसंग में कितने सूत्र हैं हमारे जीवन को दिव्य बनाने के लिए! यहां चार वस्तु ओर भी है-ईर्ष्या, द्रोह, अपमान और निंदा। मेरे भाई-बहन, ध्यान रखना कि ये चार वस्तु सदैव दूसरों के साथ ही होती है। अपने के साथ कभी नहीं होती। निंदा हम दूसरों की ही करते हैं। द्रोह हम सदैव दूसरों का ही करते हैं। कुछ छोटी-छोटी बातें हमारे जीवन से निकल नहीं पा रही! निकल जाए तो इक्कीसवीं सदी में आदमी को उर्ध्वगमन में देर नहीं लगती बाप! मैं तो आपसे बिनती करूंगा कि श्रद्धा न हो तो भी कोई बुद्धपुरुष मिल जाये तो चुपचाप बैठकर उसको ताकते। शुरू-शुरू में तो कागभुशुंडि जब आया तो कपड़ें फटे हुए थे। लटें बिखर रही थी। धूल-धूसरित शरीर था। और महाकाल के मंदिर में आकर बैठ गया। फिर उसको गुरु मिले; उसको शिवमंत्र दिये। पहले-पहले उसने एक

काम किया कि इस महापुरुष को ये देखता रहा। और महाकाल के मंदिर में तो कई ब्राह्मण देवता पूजा करते होंगे। कई जप करते होंगे। कई अभिषेक करते होंगे। कई होंगे लेकिन खबर नहीं, कागभुशुंडि को इस ब्राह्मण ने आकर्षित कया। उसको देखता रहा। परिणाम क्या हुआ कि एक त्रिकोण बन गया। आध्यात्मिक त्रिकोण बन गया यहां। महाकाल शिव, ये भुशुंडि जीव और इन दोनों को जोड़नेवाला एक सद्गुरु, जो ब्राह्मण है। एक त्रिकोण बन गया। ये तंत्र का त्रिकोण नहीं है। ध्यान देना, कोई गलत अर्थ न करे। एक बहुत सात्त्विक त्रिकोण है ये। इस दृष्टि से मैं गुरुकृपा से 'मानस' का पाठ करता हूं तो मुझे लगता है कि तीनों के स्वभाव में एकदम समानता आने लगी।

आप देखो, यहां 'मानस' में भी लिखा है, 'बिप्र एक बैदिक सिव पूजा।' ये जो ब्राह्मण देवता है महाकाल के मंदिर में, जिसके आगे 'परम साधु' शब्द लगा है। ये पूजा तो करता है लेकिन किस रूप में पूजा करता है?

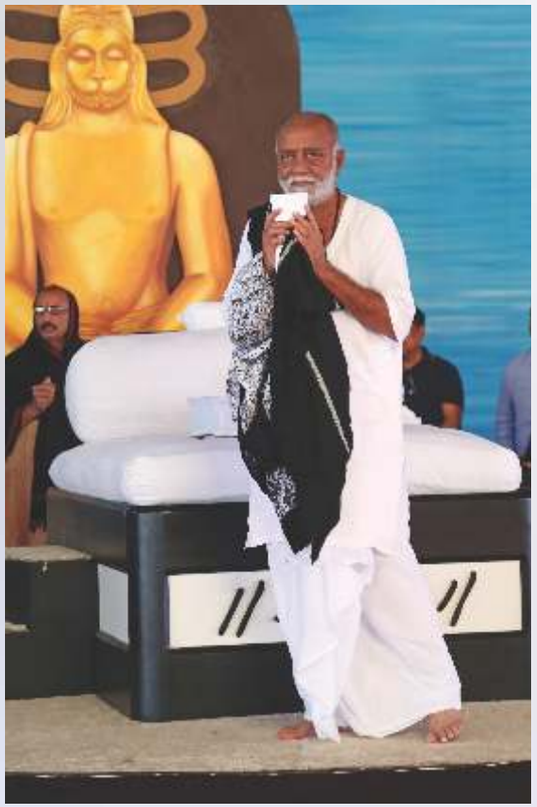

वैदिक पूजा करता है। पूजा तीन प्रकार से होती है। एक पौराणिक पूजा होती है। एक तांत्रिक पूजा होती है। एक वैदिक पूजा होती है। पौराणिक पूजा राजसी होती है। बहुधा रजोगुण की प्रधानता रहती है उसमें। और तांत्रिक पूजा तो तामसी है ही, है ही, है ही। लेकिन धन्य है ये बुद्धपुरुष, न राजसी पूजा करता है न तामसी पूजा करता है। इस बुद्धपुरुष को कागभुशुंडि देखते रहे, देखते रहे, देखते रहे। तो क्या हुआ? एक संक्रामकता आई। बुद्धपुरुष तुम्हें और हमें असर किये बिना रह नहीं सकता। चाहे लाख कवच और बख्तर पहने हुए हम क्यों न हो? तो गुरु का जो स्वभाव है ये अभी दीक्षित न हुए इससे पहले केवल देखते, दर्शन करते-करते भुशुंडि में उतरा है। इसीलिए कागभुशुंडि की साधना पद्धति में ये बात आई कि आम के पेड़ की छाया में वो मानस-पूजा करते हैं और हरि भजन के सिवा उसको कोई दूजा काम ही नहीं। ये वैदिक ब्राह्मण शिवपूजा के सिवा दूसरा कोई काम नहीं करता। और आखिर में उसका चेला भी शिवभजन के सिवा कोई काम नहीं करता। लेकिन जो महाकाल बैठा है वो? वो भी दूसरा कोई काम नहीं करता। न शिव दूजा काम करते हैं; न भुशुंडि दूसरा काम करता है; न वैदिक ब्राह्मण। ये त्रिकोण है आध्यात्मिक। ये त्रिकोण के एक कोने में है भगवंत। बिलकुल उपर का कोना भगवंत है। फिर ये त्रिकोण जो है उसके नीचे का एक कोना है हनुमंत। और इधर का एक कोना है संत। संत, हनुमंत और भगवंत एक आध्यात्मिक त्रिकोण है। आप सोचिए। संत का आश्रय हम और आप करेंगे तो क्या होगा? आधार मिलेगा। संत का आश्रय करने से बहुत बड़ा बल मिलेगा। हम किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो लेकिन संत का आश्रय करने से बहुत बड़ा आधार मिलता है; एक बहुत बड़ा बल मिलेगा। हां, इतना जरूर कि वो संत होना चाहिए। संत संत ही होते हैं लेकिन कलि प्रभाव है दुनिया पर छाया हुआ इसीलिए अंत:करण की प्रवृत्ति जब प्रमाणित करे कि ये संत है तब झुक जाना। तो संत आधार देता है और हनुमंत उपकार करता है।

तुम उपकार सुग्रीवहिं किन्हा।
राम मिलाय राज पद दीन्हा।।

हनुमानजी उपकार करते हैं। और भगवंत? भगवंत मूल में तो परमात्मा ही है लेकिन मेरी समझ में संत आधार देता है, हनुमंत उपकार करता है और भगवंत हमें प्यार करता है। सबके प्रमाण है।

सुनहु विभीषण प्रभु के रीति।
करहिं सदा सेवक पर प्रीति।।

परमात्मा प्यार करता है। संत आधार बनता है अध्यात्म में। और हनुमंत उपकार करता है। ये आध्यात्मिक त्रिकोण है।

तो दीनता को मन के साथ संबंध है। मलिनता को नयन के साथ संबंध है। और ये दृष्टि मानी दृष्टिकोण कब मलिन हो जाये। इसीलिए किसी बुद्धपुरुष की चरणरज की बहुत जरूरत है। तीसरी वस्तु दरिद्रता, धन के साथ जुड़ा हुआ संबंध। ये भीतरी दारिद्र्य की बात मैं नहीं कर रहा हूं। एक भौतिक दारिद्र्य की बात कर रहा हूं। दरिद्रता आदमी महसूस करता है धन के अभाव में। और ये भी यहां गई। तुलसी लिखते हैं, कुछ समय गया तो मुझे थोड़ा धन मिल गया। कुछ संपत्ति मिली और मैं शंकर की सेवकाई में लग गया। शिव की सेवा में ये संपत्ति लगाने लगा। और दु:ख शरीर के साथ जुड़ा है। तन के साथ दु:ख जुड़ा हुआ है। रोगों के कारण, चोटों के कारण कई प्रकार से शरीर के साथ दु:ख जुड़ा हुआ है। यद्यपि केन्द्र में तो मन होता है फिर भी शरीर के साथ दु:ख जुड़ा हुआ है। भुशुंडिजी के शरीर के साथ रहा दु:ख भी यहां गया। क्योंकि उसको लगा कि मेरी शूद्रता जो है; मैं ऐसे कुल में जन्मा हूं। लेकिन यही भुशुंडि उज्जैन की उपासना के बाद ये तन की पीड़ा से भी मुक्त हो जाते हैं। और दूसरे जनम में वो ब्राह्मण कुल में जन्म ले लेते हैं। विप्र का मेरी व्यासपीठ का इतना ही अर्थ है। 'विप्र' ये केवल वर्णवाचक शब्द न बनाया जाये, प्लीज़! व्यवस्था के रूप में ठीक है बाकी विप्र मानी जिसमें विवेक प्रधान हो वो विप्र। जो प्रपंच से विगत हो वो विप्र। और मुझे कहने दो, जो वेदपाठी हो वो विप्र। विप्र केवल वर्णवाचक नहीं।

तो मेरे भाई-बहन, कागभुशुंडि उज्जैन आये। और दीनता थी, मलिनता थी, दारिद्र्य था, दु:खी था। मुझे जो मंज़र दिखता है वो ये है कि वो कुछ समय तो ऐसे ही बैठे रहे। शिव के प्रति उनकी श्रद्धा तो थी। और महाकाल के मंदिर में बैठे लेकिन गुरु नहीं था। एक वस्तु याद रखना मेरे भाई-बहन, गुरु के बिना कोई भी उपासना सफल नहीं होती। यदि कोई उपासना कर भी ले तो अभिमानी हो जाएगा। कोई चाहिए। मैं ये चौपाई बहुत बार बोलता हूं, इसका दूसरा भी अर्थ समझ लो आप।

एक सूल मोहि बिसर न काउ।

कागभुशुंडि कहते हैं, एक पीडा, एक चुभन मेरी कभी गई नहीं। कौन-सी?

गुरु कर कोमल सील सुभाउ।

शब्द पर ध्यान दे, 'गुरु कर कोमल सील सुभाउ।' इसका एक अर्थ तो होता है कि मेरे गुरु का शील और स्वभाव बहुत कोमल है। ये मुझे भूला नहीं जा रहा। मेरे दादाजी मुझे बताते थे, बीच में जब संदर्भ आता था तब कि बेटे, इसका एक अर्थ ये होता है कि भुशुंडि ने अनुभव किया था, गुरु कर; कर मानी हाथ। उसने जब मेरे सिर पर हाथ रखा तब मुझे लगा कि ऐसा कोमल हाथ दुनिया में किसी का नहीं है। गुरु का कर; गुरुकर। तो तुलसी कहते हैं, कागभुशुंडि को लगा कि ये मेरे गुरु बन जायेंगे, 'बिप्र एक बैदिक सिव पूजा।' निरंतर शिव पूजा करता था महाकाल के मंदिर में। और गुरु के लक्षणों को देखते-देखते गोस्वामीजी कहते हैं-

परम साधु परमारथ बिन्दक।
संभु उपासक नहीं हरि निंदक।।

वो भी शिव के ही उपासक थे लेकिन विष्णुनिंदक नहीं थे। उसको गुरु के रूप में प्राप्त करने का सौभाग्य होता है। तो ब्राह्मण तो है लेकिन तुलसीदासजी शब्द जोड़ते हैं, 'परम साधु परमारथ बिन्दक।' परम साधु किसको कहेंगे? 'परम' शब्द ही बहुत प्यारा है। इसीलिए मैं कल ऐसे ही बोल गया, इसको 'महाआरती' न कहा जाये, 'परमआरती' कही जाये। 'महाआरती' शब्द तो आलोचना का भी कारण बना; विवाद का भी कारण बना था। उसके लिए एक विवाद भी खडा हो गया था। क्यों न हम 'परम' शब्द को पकड़ें? ये देश परम को ही पसंद करता है। 'मेरा देश महान', ये अच्छा नारा है। लेकिन 'मेरा देश परम है।' 'मेरा देश परम है।' पूरी पृथ्वी परम है।

एक युवान की चिठ्ठी है मेरे पास, उसने इंग्लिश में पूछा है। 'आई जस्ट वांट टू से धेट आइ लव व्हेन यू स्पीक अबाउट कागभुशुंडि। ही इज़ माय फेवरीट एन्ड वेरी क्लोझ टू माय हार्ट। कागभुशुंडि इज़ वेरी क्लोज टू माय हार्ट।' अच्छी बात है। धन्यवाद, बेटे। 'व्हेन एवर यू स्पीक अबाउट हिम आइ गेट टीयर्स इन माय आईज़।' आप भुशुंडि के बारे में बोलते हैं तो मेरी आंखों में अश्रु आने लगते हैं। बेटा, दो ही संपदा है सच्ची; एक अश्रु और दूसरा आश्रय। कोई परम का आश्रय और निगाहों में आंसू जैसी कोई संपदा नहीं साहब! तो युवक, कागभुशुंडि का नाम सुनकर तुम्हारी आंख में आंसू आते हैं तो ये अच्छी अवस्था है। कर्म का बीज हो, ज्ञान का बीज हो, बैराग का बीज

हो, बीज पनपता है जब बारिश हो। आंसू के बिना ये अंकुरित होनेवाले नहीं। मेरे 'मानस' में लिखा है, 'सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानु।'

तो बाप! 'परम' शब्द की बात मैं आपके सामने रख रहा था। 'परम साधु परमारथ बिन्दक।' तो युवानों के मन में शायद ये हो कि परम साधु किसको कहे? परम साधु की व्याख्या क्या? तो परम साधु की व्याख्या कैसे करे? कैसे पहचाने उसको कि ये परम है। हां, अपने एक वेश की महिमा होती है। अपने तिलक की महिमा होती है, अवश्य। ये तो हमारी शोभा है। ये हमारा परिचय है लेकिन उसके लक्षण, उसकी आंतरिक अवस्था का बोध हो। तो परम साधु की व्याख्या यदि करनी है तो व्यासपीठ को ऐसा लगता है, पहला परम साधु का लक्षण जो इस महाकाल के मंदिर में बैठे ब्राह्मण में है जिस व्यक्ति में केवल प्रेम नहीं, परम प्रेम हो उसको परम साधु समझना। अब 'रामचरित मानस' में परम प्रेम दो व्यक्ति में है ऐसा लिखा है। भरत और राम दोनों साधु है। तुलसीदासजी कहते हैं, राम साधु हैं; भरत साधु है। भरत के लिए 'साधु' शब्द का प्रयोग हुआ है। तो परम साधु का एक लक्षण हो गया परम प्रेम। प्रमाण-

परम प्रेम पूरण दोउ भाई।
मन बुद्धि चित अहमिति बिसराई।।

वैसे ग्रंथों में भी परम साधु के आठ लक्षण बताए गये हैं। मैं यहां 'मानस' के आधार पर कुछ बातें आपके सामने करना चाहूंगा। जिसमें परम प्रेम देखो, समझना परम साधु है। विश्व को प्रेम की जरूरत है बस। केवल-केवल बातें होती रहे, कुछ नहीं! और बातें भी ऐसे लोग कर रहे कि जिसको छोड़ो यार! मुझे मासूम गाजियाबादी का एक शे'र याद आ रहा है। बहुत प्यारा शे'र है; सुनियेगा-

उसे किसने इज़ाज़त दी गुलों से बात करने की।
सलीका तक नहीं जिसको चमन में पांव रखने का।

जिसको बगीचे में कदम कैसे रखा जाए वो मर्यादा का भी पता नहीं वो फूलों से बात कर रहे हैं! युवान भाई-बहन, परमप्रेम माँ में देखो, मानो साधु। बाप में देखो, मानो साधु। भाई में देखो, मानो साधु। पति में देखो, मानो साधु। पत्नी में देखो, मानो साधु। परम साधुता खोजने के लिए जंगल में जाने की जरूरत नहीं। हमारे इर्द-गिर्द में होते हैं। खोजना पड़ेगा। अपने शिक्षक में यदि परम प्रेम देखो, तो साधुता का एक अंग वो पूरा कर देता है। परम साधु का पहला लक्षण है परमप्रेम। दूसरा, जिस व्यक्ति में केवल परमार्थ नहीं, परम परमार्थ देखो उसको परम साधु समझना। 'परमार्थ' बड़ा प्यारा शब्द है, लेकिन परम परमार्थ। जब 'परम' शब्द लग जाता है तो बात आखिरी हो जाती है। तुलसी लिखते हैं-

सखा परम परमारथ एहू।
मन क्रम बचन राम पद नेहू।।

हे सखा, जगत में परम परमार्थ वो है कि मन, कर्म और वचन से सत्य के चरणों में समर्पित होना। वो परमसाधु है जो इस परमपरमार्थ का उपासक है मन, वचन, कर्म से। और तुलसी लिखते हैं-

भरद्वाज आश्रम अति पावन।
परम रम्य मुनिबर मन भावन।।

भरद्वाजजी के आश्रम को तुलसीदासजी ने परम रम्य कहा। साधुता का तीसरा लक्षण, जिसका आश्रम परमरम्य हो वो परमसाधु। कोई आश्रम में आप पैर रखें और परमरम्य वातावरण आश्रम को देखो तो जिसकी मानसिकता के कारण ये परमरम्यता आई है, वो समाज को परमसाधु का एक संकेत कर देता है। अथवा तो ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, संन्यास आश्रम; जिसकी ये चारों अवस्था, चारों स्थिति परमरम्य हो उसको परमसाधु समझना। तो ब्रह्मचर्य आश्रम परम रम्य हो उसकी शर्त क्या? तुलसी ने लिखा 'अयोध्याकांड' में, जिसका ब्रह्मचर्य संयमयुक्त हो। और गुरु की आज्ञा से विपरीत ब्रह्मचारी न चलता हो। ऐसा ब्रह्मचारी जगत में परमरम्य अवस्था को प्राप्त कर गया।

तो परम गृहस्थ आश्रम किसका? जो गृहस्थ आश्रमी मोह के वश न हो और कर्म का रास्ता न चुके, तो ऐसा गृहस्थ परम आश्रम को निभानेवाला है। गृहस्थ क्यों न हो लेकिन जो करम पथ न छोड़े। वानप्रस्थ आश्रम में जिसने तप न छोड़ा हो; तप रखा हो; तपस्वी बना हो वानप्रस्थ आश्रम में और भोग जिसके सहज छूट गये हो। उसका वो आश्रम परमरम्य है। वो भी एक परम साधु का लक्षण है और संन्यासी के बारे में लिखा है कि जो प्रपंचरच नहीं है, ज्ञान, वैराग से दूर नहीं है ऐसा संन्यासी का संन्यास आश्रम परमरम्य है। गोस्वामीजी रामेश्वरजी की स्थापना कराने की बात करते हैं तो कहते हैं, 'परम रम्य यह धरनी।' मेरी दृष्टि में यह भूमि परमरम्य है। भूमि छोड़ो, जिस साधक की भूमिका परम हो, वो परम साधुता का एक लक्षण पूरा कर सकता है।

तो युवानों को समझ में आये इसीलिए परम साधु के कुछ शास्त्रीय लक्षण। एक, जिसके पास कुछ दिन रहने में आपको पक्का हो जाये कि ये आदमी ने कभी भी किसी की निंदा नहीं की है तो समझना वो परमसाधु। दूसरा, जिसके संग में रहने के बाद हमें ये अनुभव होने लगे कि ये आदमी कभी झूठ नहीं बोलता है और सत्य बोलता है तो भी प्रिय सत्य बोलता है। तीसरा लक्षण है, कोई कविता सुनाये और उस कविता में कविता का कोई भी लक्षण न हो और तो भी चुपचाप सुनकर उसकी पीठ हाथ रखकर उसको दाद दे उसको परम साधु का लक्षण माना है। लक्षणहीन कवि को भी निरुत्साह न करे ये साधु का लक्षण है। शास्त्रकार ने बताया उसको साधु समझना। झूठ न बोले, निंदा न करे, बेचारा कोई प्रेम से आया है तो उसको हतोत्साह न करे, ये परमसाधु का लक्षण माना गया है। किसी के साथ कभी भी स्पर्धा में न उतरे वो परमसाधु का लक्षण है। ज्यादा से ज्यादा मौन रहे और मौन में अपने इष्ट के मंत्र का निरंतर जप करे उसको भी परमसाधु का लक्षण ग्रंथों में माना गया है। जिसकी वाणी में, जिसके वर्तन में, जिसकी निगाह में, जिसके वचन में, जिसके मन में भी कभी हमें ये महसूस हो कि इस आदमी में अपनी उपलब्धियों का कोई गर्व नहीं है, समझना परमसाधु।

तो कागभुशुंडिजी ने गुरु का जो वर्णन किया है वो परमसाधु है, वो परमारथ का जानकार है। शिव की उपासना तो करता है लेकिन औरों की निंदा नहीं करता। भुशुंडि कहते हैं, ऐसे ब्राह्मण ने मुझे शंभुमंत्र दिया। और मैं उसकी सेवा तो करता था लेकिन कपट समेत मैं सेवा करता था। बहुत सोचने जैसी बात है। किसी की भी सेवा हम करे तो कहीं कपट तो नहीं! सबसे बड़ा कपट है झूठ बोलना। क्या भुशुंडि का गुरु जानता नहीं होगा कि ये झूठ बोल रहा है? लेकिन वो नीतिनिकेत थे। कुछ बोलते नहीं थे। तो कागभुशुंडिजी कहते हैं कि उस समय महाकाल के मंदिर में उस ब्राह्मण को गुरु बनाकर मैं शंभु मंत्र का जप करता था लेकिन मेरा द्रोह चालू था! मेरा अपमान चालू था! मेरी ईर्ष्या चालू थी! मेरी निंदा चालू थी! और करीब-करीब हम देखते हैं अपने जीवन की ओर कि अच्छा गुरु मिलने के बाद भी हमारा ये चारों चालू रहता है! निंदा करते रहते दूसरों की! ईर्ष्या करते रहते दूसरों की! द्रोह करते रहते दूसरों का! अपमान करते रहते दूसरों का!

तो 'मानस-महाकाल' की कुछ परिकम्मा अथवा वाङ्मय अभिषेक हमारे जीवन को विकसित और विश्राम की ओर विशेष रूप में ले जाने के लिए हम कर रहे हैं। 'मानस' की कथा का मैं क्रम उठाउं इससे पूर्व एक-दो प्रश्न ले लूं। 'बापू, किसी जीव के द्वारा किये गये क्रोध और शिव के क्रोध में क्या अंतर है?' मैं इतना ही कहकर आगे बढ़ूं, जीव का क्रोध बिलकुल स्पष्ट होता है, नगद होता है; बिलकुल सौ टच का सोना, कोई मिलावट नहीं। शिव का क्रोध बोध से भरा हुआ होता है; मिलावटवाला होता है। उसमें क्रोध की मात्रा कम होती है, बोध ज्यादा होता है। इसीलिए तो शिव को हम कहते हैं, 'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणं।' हमारा क्रोध बिलकुल स्पष्ट होता है, शंकर का क्रोध बोध से प्रेरित होता है, ऐसा मैं मानता हूं।

'अस्तित्व द्वारा प्रगट व्यवहारभेद और द्वेषबुद्धि में क्या अंतर है?' अस्तित्व द्वारा जो व्यवहारभेद होता है वो विश्वमंगल के लिए होता है, द्वेषबुद्धि के द्वारा जो द्वैत पैदा होता है, वो बड़ा खतरनाक होता है। अस्तित्व तो जगतकल्याण के लिए भेद करेगा ही, करना पड़ेगा ही कि हिमालय में उस समय में बर्फ़ गिरे, यहां उस समय में गर्मी हो। वहां इस समय में बारिश हो, वहां उस समय में कुछ हो। अमरिका में कुछ हो। ये अस्तित्व तो भेद करेगा समाज को सुव्यवस्थित रखने के लिए। लेकिन द्वेषबुद्धि से भेद

> संत, हनुमंत और भगवंत एक आध्यात्मिक त्रिकोण है। संत का आश्रय करने से बहुत बड़ा बल मिलेगा। हम किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो लेकिन संत का आश्रय करने से बहुत बड़ा आधार मिलता है; एक बहुत बड़ा बल मिलेगा। हां, इतना जरूर कि वो संत होना चाहिए। संत आधार देता है और हनुमंत उपकार करते हैं; हनुमानजी उपकार करते हैं। और भगवंत? भगवंत मूल में तो परमात्मा ही है। लेकिन मेरी समझ में संत आधार देता है, हनुमंत उपकार करता है और भगवंत हमें प्यार करता है।

होता है वो बड़ा खतरनाक है! द्वेषबुद्धि से किया हुआ भेद मेरी दृष्टि में क्रूरकर्मा है, इससे बचें।

गत दिन की कथा का क्रम पकड़ें। भगवान शिव सती के संग कुंभजऋषि के आश्रम में कथा सुनने के बाद लौटे। दंडकारण्य से वो कैलास की ओर जा रहे हैं। रास्ते में उसी त्रेतायुग का भगवान राम का अवतार अथवा तो प्रभु की नरलीला वर्तमान थी। रावण सीताजी का अपहरण करके निकल गया था। रामजी सीता के वियोग में मानवलीला करते हुए रो रहे थे। उसी समय शिव और सती वहीं से निकले। शिवजी ने राम का दर्शन किया और बहुत भाव में आये शिव, 'हे सच्चिदानंद! हे जगपावन' कहकर मन ही मन सत्-चित्त-आनंद स्वरूप का स्मरण किया और भाव में डूब गये। सती के मन में संदेह पैदा हुआ। भगवान शिव सती को समझाने लगे कि देवी, हम जिसकी कथा सुनने के लिए गये वो मेरे इष्टदेव भगवान राम है, ये परमात्मा है, ये ब्रह्म है, ये ईश्वर है। आप संशय न करो। शिवजी ने बारबार समझाया सती को लेकिन सती मानी नहीं तो शिवजी सती से कहते हैं कि देवी, आपके ढंग से परीक्षा करो कि ये ब्रह्म है कि सामान्य संसारी मानवी है? सती परीक्षा के लिए तैयार होती है। लेकिन शिव ने अपने आपको संभालते हुए हम सबको बहुत प्यारा सूत्र दिया-

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढावै साखा।।

शिवजी तो विश्वास के देव हैं। सोचा कि भगवान ने जो रचा होगा वो ही होता होगा। मैं क्यों तर्क-वितर्क करूं? युवान भाई-बहन, जीवन में कोई समस्या आये तो पूरे के पूरे प्रामाणिक प्रयास कर लेने चाहिए लेकिन सब प्रयास करने के बाद भी समस्या का हल न हो तो ईश्वर पर छोड़ देना चाहिए। तो शिवजी हरि नाम लेने लगे और यहां सती ने बहुत सोचने के बाद सीता का रूप लिया। भगवान ने अपनी मर्यादा से आंखें उपर उठाकर देखा तो सीता के रूप में सती को देखा और दोनों हाथ जोड़कर भगवान राम ने प्रणाम करते हुए कहा कि आप अकेली बन में क्यों घूमती हैं? मेरे पिता शंकर कहां है? पकड़ी गई! शिव के पास आती है। शिवजी ने मुस्कुराते हुए सती को पूछा कि आपने किस प्रकार की परीक्षा ली? सती झूठ बोली, मैंने कोई परीक्षा नहीं ली भगवन्। सती ने जो-जो किया वो शिव ने ध्यान में देख लिया, सती ने सीता का रूप लिया! राम मेरे इष्टदेव हैं, सीता मेरी माँ है। शिव सोच रहे हैं, अब मैं सती से गृहस्थ जीवन रखूं तो भक्ति का मार्ग टूट जाएगा। अंदर से प्रेरणा हुई कि जब तक सती का ये शरीर रहेगा, मेरा और उनका कोई संबंध नहीं।

सत्तासी हजार साल के बाद शिव समाधि से अपने आप जागृत हुए और 'राम, राम, राम' महामंत्र का उच्चारण किया। सती शिव के पास आती हैं। रसप्रद कथा सुनाते हैं शिव। उसी समय दक्षयज्ञ की कथा आई। आकाश में विमानों की आवाज़ सुन कर सती शिव से पूछती है, ये विमान कहां जा रहे हैं? शिवजी ने कहा कि आपके पिता दक्ष प्रजापति यज्ञ कर रहे हैं। मेरे साथ जरा मनदु:ख है उसको इसीलिए मुझे नहीं बुलाया। सती तुरंत कहती है, प्रभु, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं मेरे पिता के घर जाऊं? सती मानी नहीं। जिद्द पकड़ती है। सती पिता के भवन जाती है। किसी ने बुलाई नहीं। माता ने प्रेम से बुलाई। और यज्ञमंडप में गई। कहीं भी शंकर भगवान का स्थापन न देखा तब बहुत बुरा लगा। कुपित हुई सती यज्ञपंडाल में। यज्ञकुंड में अपने शरीर को आहूत कर दिया। सती जल गई! हाहाकार हो गया! दक्ष की दुर्गति हुई।

सती का दूसरा जन्म, नगाधिराज हिमालय के घर पुत्री के रूप में प्रगट हुई। हिमालय के घर पार्वती बनकर सती आई। बड़ा उत्सव हुआ। पुत्री के जन्म की बधाईयां होने लगी। आजकल ये सब प्रश्न चलते हैं लेकिन तुलसी ने तो इतने सालों पहले कह दिया कि परिवार में पहले बेटी का जन्म हो तो विशेष उत्सव मनाना। हां, पुत्र का जन्म हो ये सबको अच्छा लगता है लेकिन कन्या का जन्म हो तो भी ज्यादा उत्सव मनाना। क्योंकि एक कन्या जब जनम लेती है परिवार में तब कृष्ण की सात-सात विभूति हमारे घर में जन्म लेती है। भगवान ने 'गीता' में 'विभूतियोग' में नारी की बात की तब नारी में सात-सात विभूति के रूप में कृष्ण वर्णन करते हैं। तो जब घर में बेटी का जन्म हो तब समझना कि हमारे घर में सात-सात प्रकार की विभूतियां प्रगट हुई है। हिमालय की समृद्धि बढ़ने लगी। ऋषि महात्मालोग आने लगे। इसी शृंखला में एक दिन नारदजी पधारते हैं। हिमालय नारदजी को कहते हैं कि मेरी बेटी का नामकरण करो और उसका भविष्य कथन करो। नारदजी नाम रखते हैं पार्वती का उमा, अंबिका, भवानी। कई नाम हो सकते हैं। और फिर भवानी की भविष्य कथा कथन करते हैं। ये सब कथा का क्रम हम कल लेंगे।

'रुद्राष्टक' सिद्ध भी है और शुद्ध भी है

बाप! एक जिज्ञासा किसी युवक की थी, रह गई। पूछा है कि कागभुशुंडिजी महाकाल के मंदिर में गुरु अपराध कर बैठते हैं और गुरु का चित्त सम्यक् बोध था इसीलिए वो तो कुछ नहीं बोले लेकिन भगवान शंकर कुपित हो गए और भगवान शिव शाप देते हैं। हाहाकार मच जाता है! भुशुंडिजी भी कांप रहे हैं इससे ज्यादा गुरु कांप रहे हैं। शंकर क्रोध के कारण कांप रहे हैं। तीनों जगह कम्पन है। इस कम्पनों में 'रुद्राष्टक' का जन्म होता है। तो पूछा गया है, 'रुद्राष्टक' अष्टक ही क्यों है? सप्तक क्यों नहीं? षट्क क्यों नहीं? पंचक भी कर सकते थे, सप्तक भी लिख सकते थे लेकिन अष्टक लिखने के पीछे क्या कारण है? बड़ा प्यारा प्रश्न है। सोचने के लिए बाध्य कर दे ऐसी जिज्ञासा है। मैं कुछ बातें आपसे करूं। 'रुद्राष्टक' की स्तुति यहां अष्टक में आई है, इसीलिए तो हम उसको अष्टक कहते हैं; रुद्र का अष्टक। इसका एक कारण तो ये है कि भगवान शिव अष्टमूर्ति है। भगवान शिव को शास्त्रकारों ने अष्टमूर्ति माना है। और ये अष्टमूर्ति एक कारण बनता है कि अष्टक गाया गया। दूसरा, ये अष्टक की रचना इसीलिए हुई कि अपराध होने के बाद हम अष्टक गायें और अपराध से मुक्त हो। वो तो है ही। लेकिन हम जीव हैं। कभी भी अपराध कर सकते हैं। कभी ब्राह्मण का द्रोह कर दें, कभी हरिजन का द्रोह कर दें, कभी गुरु का द्रोह कर दें। यहां एक कारण तो अष्टक का ये भी है।

अष्टक का एक कारण तो ये है कि कुल मिलाकर कागभुशुंडि ने आठ अपराध किये हैं। भुशुंडिजी के जो अपराध हो गये, गुरु अपराध, द्विजद्रोह। उनमें कुल मिलाकर आठ अपराध हैं। और इन आठों अपराधों से मुक्ति के लिए 'रुद्राष्टक' की रचना है। और ये आठ अपराध करीब-करीब हम सब करने लगते हैं। तो आठ अपराध है भुशुंडि के। 'आन देव निंदक अभिमानी।' से लेकर आप उसके अपराध गिनोगे तो बिलकुल आठ मिलेंगे। और ये आठ अपराधों से मुक्ति के लिए शायद बुद्धपुरुष ने अष्टक, 'रुद्राष्टक' गाया। ये भी कारण है। अष्टक लिखने के पीछे ये भी कारण हो सकता है कि भगवान शंकर महाकाल जब कुपित हुए तो उसने भुशुंडि को शाप देते समय आठ प्रकार के संबोधन किये। कभी अज्ञानी कहा; कभी अभिमानी कहा; कभी खल कहा; कभी शठ कहा; कभी अधमाधम कहा। आठ प्रकार के संबोधन किये। इसलिए शायद अष्टक आया। और अष्टमूर्ति तो शिव है ही। इसलिए अष्टक। तो कई कारण इसके बताये जा सकते हैं।

इस प्रवाह में बातें चली तो मैं आपसे ये भी निवेदन करना चाहूंगा कि पूरे 'रुद्राष्टक' में केन्द्र में तो महाकाल है। लेकिन बहुत गुरुकृपा से उसको देखा जाए तो पूरे 'रुद्राष्टक' में बारह ज्योतिर्लिंग का किसी न किसी संदर्भ में संकेत हैं। मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं, 'रुद्राष्टक' के प्रति मेरी विशेष श्रद्धा है, थोड़ा कुछ अनुभव है तो आपसे शेर करूं कि बारह ज्योतिर्लिंग 'रुद्राष्टक' के अंदर समाहित हैं। अब जब 'नमामिशमीशान', 'ईशान' शब्द जब पहला आया तो ईशान सीधा

केदार का संकेत करता है। पूरी दिशा ही तो यही बता रही है कि 'ईशान' शब्द सीधा भगवान केदारेश्वर का ही संकेत करता है। 'भाल बालेन्दु।' भाल में इन्दु है। चन्द्र है तो सीधा सोमनाथ का संकेत है। ये सोमेश्वर है और 'निर्वाण रूपं' जब भगवान 'रुद्राष्टक' की स्तुति में, महाकाल को निर्वाण रूप कहा तो सीधा बनारस का संकेत। ये निर्वाणदाता शिव, विश्वनाथ है। 'शिवं शंकरम्', ये भीमाशंकर की ओर संकेत है। 'कंठे भुजंगा', ये नागेश्वर का संकेत है। आप 'रुद्राष्टक' अपनी झोली में पुस्तक के रूप में रखो अथवा तो 'रामचरित मानस'; 'मानस' में ये 'रुद्राष्टक' है; ये अपनी झोली में रखे तो यदि आपका भरोसा और श्रद्धा हो तो आपकी झोली में आप बारह ज्योतिर्लिंग लेकर घूम रहे हैं। प्रश्न है भरोसे का। भरोसा न हो तो यहां बैठने के बाद भी घटना नहीं घटती कभी-कभी। और भरोसा हो तो बारह ज्योतिर्लिंग हमारे संग-संग चलते हैं। बारह क्या? ज्यादा है। ओर भी जो हमारे विशिष्ट शिवधाम है वो भी इसमें समाविष्ट है। 'सर्वभूतादिवासम', प्रत्येक भूत के आप भूतपति हैं। तो मुझे वहां पशुपतिनाथ का संकेत मिल जाता है कि वो नेपाल तक की दृष्टि वहां गई है। आये दिन उसकी चर्चा करेंगे। लेकिन आपके ध्यान में रहे कि पूरा 'रुद्राष्टक' द्वादश ज्योतिर्लिंगमय है।

तो बड़ा अद्‌भुत, अलौकिक ये है ये 'रुद्राष्टक।' महाकाल के मंदिर में आकाशवाणी हुई। आकाशवाणी का तो अर्थ है कि आकाश से आई हुई वाणी होगी। लेकिन 'रुद्राष्टक' ये उपरवाले आकाश से नहीं आया, ये अंदर से चिदाकाश से निकली वाणी है। ये अंदर से फूटी एक अद्‌भुत वाणी 'रुद्राष्टक' है। 'रुद्राष्टक' इन्सान की रामभक्ति को दृढ़ करता है। मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं, 'रुद्राष्टक' का पाठ कृष्णभक्ति को बल देता है। 'रुद्राष्टक' का पारायण आदमी में आह्लाद और ऊर्जाशक्ति भर देता है। मुझे बोलने में ध्यान रखना पड़ता है लेकिन जिम्मेवारी से बोलूं तो, मैं कहूं 'रुद्राष्टक' सिद्ध भी है और शुद्ध भी है। ऐसे ही आप पाठ करो तो भी उसकी महिमा है। लेकिन 'रुद्राष्टक' आप गा कर बोलो। मेरी प्रतीति तो ऐसी है कि ये वैदिक ब्राह्मण ने 'रुद्राष्टक' गाया होगा। महाकाल के मंदिर में इसका गायन हुआ होगा। और मैं वहां तक कहना चाहूंगा कि 'रुद्राष्टक' जब पहली बार गाया गया महाकाल के मंदिर में तब वहां स्वर्ग के बाजे बजानेवाले, न दिखते हो ऐसे, सब उसमें साथ देने आये होंगे! एक अद्‌भुत वातावरण पैदा हुआ होगा।

तो युवान भाई-बहनों के लिए मैं कहना चाहूंगा कि ये अष्टक आठ अपराध से मुक्त होने का अष्टक है। ये अष्टक हमारे में रही आठ प्रकार की बुराईयां हैं उसकी निवृत्ति के लिए ये अष्टक है। और प्रकृति अष्टधा है। अष्टधा प्रकृति आदमी को बलात् किसी न किसी रूप में विमोहित कर देती है। अष्टधा प्रकृति से मुक्त होना है तो भी ये 'रुद्राष्टक' एक बहुत बड़ा सफल साधना का साधन है। तो मेरे कहने का मतलब ये अष्टक है। अष्टक की बड़ी महिमा है। एक बार उसका पारायण करें-

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।।
निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।
गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

और एक बात ओर भी मैं बताके आगे चलूं कि ये 'रुद्राष्टक' जब गाया गया तो मुख्य गायक तो वो वैदिक ब्राह्मण है। उद्‌गार आपके हैं। आपके अंत:करण से ये प्रगट हुआ है। लेकिन मुझे तो बताया गया था वो ये है कि ये 'रुद्राष्टक' इसीलिए है कि आठ लोगों ने एक साथ गाया है। 'रुद्राष्टक' आठ लोगों ने गाया है। अब आप कहेंगे कि कौन-कौन? 'रुद्राष्टक' का गायन शुरू हुआ। भगवान महादेव तो चुप हैं। शाप दे चुके हैं। मूल गायक, केन्द्रीय गायक, रचना तो बाबा की है। रचना क्या, उनके अंत:करण की पुकार तो ये वैदिक ब्राह्मणदेवता की है। लेकिन जब इतना कड़ा शाप दे दिया महादेव ने और ये एक शूद्र बालक कांप रहा है। सब कांप रहे हैं! ये दृश्य बहुत कंपानेवाला हैं! स्वयं शंकर भी क्रोध के मारे कांप रहे हैं! भुशुंडिजी की तो दशा ही वो जाने! इतने घबरा गये हैं! कोने में छिप गये हैं एक बुद्धपुरुष कि शिष्य का क्या होगा? और स्वयं बुद्धपुरुष भी एकदम चिंतित है। और सोचा, मेरे अकेले के गायन करने से ये बात ठीक से पहुंचेगी? तो यहां 'रुद्राष्टक' गाने में प्रधान स्वर तो इस वैदिक ब्राह्मण का है। लेकिन संगति की है इस एक कोने में कांपता हुआ उस बालक, जिसने अपराध किया है, उसको देखकर पराम्बा पार्वती ने; उसको करुणा फूटी है। और स्वाभाविक बालक को देखकर

माँ के मन में जो भाव जगता है। तो सोचा कि भगवान शिव के कोप को शांत करने में अभी तो कोई युक्ति काम में नहीं आएगी। बाबा ने 'रुद्राष्टक' शुरू किया है। बाबा तो शिव के सामने देखकर 'रुद्राष्टक' गा रहे हैं लेकिन पार्वती ने अंदर सूर पुराया था। और ये भुशुंडि के सामने ये कोने में आंख रखकर पार्वती 'रुद्राष्टक' गा रही थी। दो सूर इकठ्ठे हुए। उसी समय शिव का पूरा परिवार शिव के पक्ष में नहीं रहा। सब इस बुद्धपुरुष के पक्ष में आ गये। और याद रखना कि प्रत्येक की आत्मा सत्त्व चाहती है। घर की निकट की व्यक्ति कितनी ही महान क्यों न हो, ये कोई बुराई कर दे; ये कोई क्रोध कर दे; ये कोई नासमझी कर दे; भले ही उसके पीछे उसके कोई रीजन होंगे। लेकिन आत्मा का जो सत्त्व है, ये इससे थोड़ा दूर चला जाता है। सब एक हो गये।

मुझे अच्छा लग रहा है कि एक बुद्धपुरुष की शरण में एक ऐसा बालक आया! क्या उसमें बुराइयां नहीं थी साहब? लेकिन एक बुद्धपुरुष की शरण में आने के कारण सब शिवपरिवार इस बालक के पक्ष में और गुरु के पक्ष में खड़े हैं। महादेव के पक्ष में नहीं खड़े रहे। तो तीसरे गायक 'रुद्राष्टक' के थे गणेशजी। गणेशजी ने महाकाल के मंदिर में मृदंग बजाया था और गान गाया भी था। तो पार्वती ने गाया संग में 'रुद्राष्टक।' इसलिए कल कोई माताजी ये मुझे न पूछे कि 'रुद्राष्टक' बहनलोग गा सके कि नहीं? गा सके। उमा ने उस दिन गाया था। गणेशजी ने गाया बजाते हुए। कार्तिकेय ने मयूर नृत्य करते-करते गाया। शास्त्र कहता है, भगवान शिव स्वयं नर्तक है। और 'शिवसूत्र' में तो आता ही है, 'आत्मा नर्तक:।' तो वाद्य भी बजा है और बजानेवाला गा भी रहा है। नृत्य भी हुआ है। नर्तक भी गा रहा है। पार्वती भी एक मातृभाव से ये 'रुद्राष्टक' गा रही हैं। चार स्वर मिले। और पांचवां स्वर था नंदीकेश्वर का। नंदी ने गाना शुरू किया। नंदी ने भी सूर पुराया।

नंदी, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय और गुरु, पांच स्वर इकठ्ठे हो गये। शुरू हुआ ही है। साज सज चुके। पार्वती को पता है कि मेरा पति कृपालु है। अभी कृपा कर देंगे इसलिए बहुत जल्दी में नहीं है। गणेशजी अपने ताल वाद्य को सजा रहे हैं। जल्दी में नहीं है। मयूर मानो घूंघरु बांध रहा है कार्तिकेय का वाहन; साथ में नाचने के लिए। नंदी बाबा सचेत हैं कि पूरा सूनुं। और फिर महाकाल के मंदिर में कुछ घटना घटने जा रही है वो समाचार, वो संकेत ब्रह्मा के पास पहुंच गया! पितामह ब्रह्मा ने सोचा कि कुछ और विशेष घटना घटने जा रही है। ब्रह्मा ने अपने विज्ञान के द्वारा निरीक्षण किया तो पाया कि 'रुद्राष्टक' का गायन महाकाल के मंदिर में होने जा रहा है। तब पितामह ने दृष्टि घुमाई। सरस्वती को संकेत हुआ था। और वीणावादिनी सरस्वती महाकाल के मंदिर में आई थी। आप कल्पना करो, महाकाल के मंदिर में क्या-क्या हुआ! तो पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, नंदीश्वर, सरस्वती, बुद्धपुरुष और गंगा; सात हुए। एक आदमी नहीं गा रहा था क्योंकि वो डर गया था, रो रहा था! और आठों गाएं ऐसी अस्तित्व की मांग थी। और आप समझ जाइए, नहीं गा रहा था वो था भुशुंडि। महाकाल के मंदिर के खंभे से लिपट कर जो उसने पाप किये हैं, द्रोह किये हैं! आठ-आठ प्रकार के द्रोह, आठ-आठ प्रकार के पाप लगे हैं। अभिमानी था, उग्र था। थोड़े धन का मद भी था। अपने आप को कुछ का कुछ समझता था! गुरु तक अपमान कर सकता था।

आठ द्रोह में उसने एक बड़ा द्रोह किया। उसने कहा, 'एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।' शिवनाम जप रहा। उसको नाम नहीं दिया था। शंभुमंत्र दिया था। और गुरु ने मंत्र दिया और मंत्र के बदले शिष्य अपना डाहपन लगाकर नाम जपने लगे! तो उसने मंत्रद्रोह कर दिया है। आठ द्रोह में एक तो मंत्रद्रोह। तो भुशुंडि से शास्त्रीय रूप में मंत्रद्रोह भी हुआ। गुरु ने दिया था मंत्र और वो मंत्र छोड़कर नाम जपने लगा! मनमानी करने लगा! तो ये भी एक द्रोह था। तो सात लोग अष्टक गाने के लिए तैयार है अपनी-अपनी रीत में। लेकिन ये एक अंदर शरीक नहीं होता। रो रहा है। एक आदमी जो भुशुंडि है, वो चुप है। वो गा नहीं रहा। वो चीख रहा है, रो रहा है। क्योंकि बड़ा कराल शाप का भागी बना है। और भुशुंडिजी के पास बुद्धपुरुष जाते हैं। कांपते हुए बालक के सिर पर हाथ रखते हैं। और उसको सचेत करते हैं कि बेटा, तू भी गा। गुरु के अंक में अपना सिर रखकर बहुत रोया! गले लगाते हैं, बेटा, तू भी गा। खुशियों के दिनों पर तो सब गातें है बेटा, शुभ काल हो तो सब गाते हैं। बेटा, तू भी गा। गंगा गा रही है बेटा। तुम्हारे कल्याण का स्तोत्र जो विश्व का कल्याण करेगा। ऐसे स्तोत्र के गायन में भगवती सरस्वती आई और माँ दुर्गा स्वयं गा रही है। तीन देवियों के कंठ इसमें मिले हैं। और मुझे ये भी कहना है कि कौन बंध किसने गाया है? आई विल टेल यू। मेरे लिए 'रुद्राष्टक' 'रुद्राष्टक' है। तो उसको गाने के लिए वो कह रहे हैं, तू गा ये। वो नहीं गा पा रहा है। कैसे गाऊं?

बाप! पहला मुखडा जो आरंभ है वो बुद्धपुरुष ने गाया था। सब ने गाया लेकिन प्रधान मुखडा जो है-

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।

पहला भाग। उसके बाद का दूसरा भाग श्री गंगाजी ने गाया था। फिर तीसरा बंध पराम्बा पार्वती ने गाया था। चौथा बंध नंदीश्वर ने गाया था। पांचवां बंध भगवती सरस्वती ने गाया था। छठ्ठा बंध कार्तिकेय ने गाया। सातवां गजानन गणेश ने गाया था। आठवां बाकी है। और बुद्धपुरुष को गवाना है अपने शिष्य के मुख से।

बुद्धपुरुष क्या है? वो चाहता है कि रोते हुए गाए। मेरा आश्रित रोये ना। यही तो उनकी भावदशा होती है। विश्व में बुद्धपुरुष जैसा संवेदनशील कोई नहीं हो सकता। 'रामचरित मानस' के राम के लिए तो 'विनय' में ऐसा लिख दिया गया कि प्रभु का जो विग्रह है वो करुणा से बना हुआ है। वो हाड, चमडी, मज्जा, लहू इससे नहीं बना। वो करुणामयी मूर्ति है। बुद्धपुरुष भी करुणामय होता है। तो इतने लोगों ने गाया। ये बच्चा नहीं गा रहा है। और बाबा उसको गवाने के लिए बार-बार सचेत करते हैं, तू गा। कहे, मुझे थोड़ा स्वस्थ होने दो। स्वस्थ किया। और फिर घटना घटती है। उसने कहा, मैं पूरा 'रुद्राष्टक' नहीं गा पाऊंगा। ये आप गाओ। मेरे लिए आखरी बंध बाकी रखना। मैं आखिर में गाऊंगा। फिर भी वो बोल नहीं पा रहा है। गुरु तो समझ गया था कि इसके आंसू में पूरा 'रुद्राष्टक' समाया हुआ है। लेकिन वो गाए तो गुरु को अच्छा लगे इसलिए गुरु गवाना चाहता था। 'रुद्राष्टक' के एक-एक बंध के गायन के कारण अष्टमूर्ति शंकर का क्रोध नीचे उतर रहा था। अब आखरी क्रोध का हिस्सा था। ये बच्चा गा ले तो क्रोध पाताल में चला जाये। और यहां सभी भुशुंडि के सामने देख रहे हैं, तू गाए। लेकिन वो बेचारा हिंमत नहीं कर पा रहा था! कैसे गाए? अपराधी जिसका अपराध हुआ हो, उसके सामने जब अपराध कुबूल कर लेता है और अपराध जिसका हुआ हो वो जरा कुपित मुद्रा में हो तो फिर बोलना मुश्किल होता है अथवा तो एक प्रेमी अपने प्रेमी के पूर्णभाव में डूब जाता है तब उसको व्यक्त करना करीब असंभव-सा हो जाता है। अपराध करने नहीं चाहिए बाप! ईश्वर की दी हुई बुद्धि से विवेक में जीना चाहिए। अपराध नहीं करना

चाहिए लेकिन अपराध हो जाए और अपराध करनेवाले को ये सभानता आ जाए कि मैंने भयंकर अपराध कर दिया है। उसके बाद कोई अपराधी कांपता हो तब जमाने को अधिकार नहीं कि उसको ओर डांटा जाए। उसका कांपना ही वो दंडित हो चुका है। इतना कांप रहा है भुशुंडि! और भुशुंडि के सिर पर हाथ रखा गया, होठ पर हाथ रखा गया तब फिर भुशुंडि के मुख से ये बंध निकला-

न जानामि योगं जपं नैव पूजा।
नतोहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।।
जरा जन्म दु:खौध तातप्यमानं।
प्रभो पाहि आपन्निमामीश शंभो।।
नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।।

और फिर जब ये बालक ने, ये बुद्धपुरुष के नादान शिष्य ने निर्दोष भाव से आंसू के साथ ये आठवें बंध का गायन किया, उस समय आठों रो रहे थे! गुरु, गौरी, सरस्वती, नंदी, कार्तिकेय, सब। और फिर इस आंसू के इतने भावपूर्ण वातावरण में आखिर में आठों ने एक साथ गाया-

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।
ये पठन्ति नरा भक्तया तेषां शम्भु: प्रसीदति।।

'रुद्राष्टक' पूरा होने के बाद जब ये गवाया गया उसके बाद इस बालक की पीठ पर गुरु ने हाथ रखा और मानो संकेत कर दिया था कि दौड़। और ये दौड़ा भुशुंडि। और ये दृश्य भूला नहीं जाता जब महाकाल के शिवलिंग को एक आठ-आठ प्रकार के द्रोह करनेवाले आदमी ने अपने आलिंगन में ले लिया! मंदिर में से पुष्प की वृष्टि होने लगी थी। अस्तित्व स्वयं प्रसन्न-प्रसन्न हो गया था। और इस 'रुद्राष्टक' के कारण भगवान शिव कृपालु हो गये थे। और फिर वो आशीर्वाद की जड़ी बरसाते हैं।

तो मेरे भाई-बहन, ये 'रुद्राष्टक' अष्टक है क्योंकि इसमें आठ अपराध की ओर संकेत है। ये अष्टक है क्योंकि इसमें आठ प्रकार से संबोधन है। ये अष्टक है क्योंकि प्रकृति अष्टधा प्रकृति मानी जाती है। और आठ बंध के कई कारण ऐसे हमारे यहां बताये गये हैं। तो क्या कहूं 'रुद्राष्टक' के लिए? परम, परम, परम स्तोत्र है ये 'रुद्राष्टक', जो बारह ज्योतिर्लिंगों को अपने अंदर समाया हुआ है। तो 'रुद्राष्टक' का पाठ करने से आप बारह ज्योतिर्लिंगों का दर्शन कर सकते हैं; यात्रा कर सकते हैं; उसकी महसूसी कर सकते हैं। सवाल है एक ही भरोसा बस!

एक बालक के हाथ में पांच सौ रूपया दे दो तो ये बालक के हाथ में पांच सौ है उसमें से उसका एक यूनिफार्म आ सकता है। लेकिन बालक को पता नहीं तो फाड़ भी सकता है नोट को! क्योंकि उसको पता नहीं कि नोट का कोई मूल्य है। तो ऐसे 'मानस' की चौपाईयां, 'मानस' के स्तोत्र, 'मानस' की स्तुतियां ये तो अत्यंत दुर्लभ है साहब! ऐसा ग्रंथ कहां है? तो उसका अनुभव हमें नहीं हो रहा है। मेरी समझ में अब ऐसा होने लगा हैं कि जितनी भी आलोचनात्मक बातें आई है, मेरी दृष्टि में आलोचनात्मक लगती ही नहीं। उसको पोजिटिव करनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति की सत्तर प्रतिशत बुराईयां हो। हम भागते क्यों ये बुराईवाला पक्ष देखें? क्यों न हम तीस प्रतिशत अच्छाईवाला पक्ष देखें? इतना परिवर्तन करने से जीने में बहुत खुशी आएगी, प्रसन्नता आएगी, धन्यता आएगी।

ये चैत्र नवरात्र, अभी भुवनेश्वर में हम थे। तो सब पाठ करते हैं न नौ दिन के 'मानस' के। तो मेरा भी पाठ-पारायण चल रहा था अपने ढंग से। तो आखरी दिनों में मैं 'रुद्राष्टक' तक पहुंचा तब मैं थोड़ा रुक गया पाठ करते-करते। और 'रुद्राष्टक' के आठ जो बंध है, उसमें मुझे गुरुकृपा से पतंजलि के अष्टांग योग के आठों सूत्र दिखने लगे। इसमें एक बंध आसन दिखाता है। एक बंध प्राणायाम की बात करता है। एक बंध संयम-नियम की बात करता है। एक प्रत्याहार की बात करता है। एक ध्यान की, एक धारणा की और एक समाधि की बात करता है। 'रुद्राष्टक' गजब है साहब! गजब है! गजब है! उनमें से क्या नहीं निकलता? 'रुद्राष्टक' मेरी समझ में एक आध्यात्मिक प्रयोगशाला है। जो 'इति सिद्ध' कर सकती है साधक की। जैसे मैं कहता हूं न कि 'हनुमानचालीसा' आप कोई भी धर्म के अनुयायी हो, आप पढ़ो। आपको कोई तकलीफ़ न होती हो तो। क्योंकि आपको प्राणबल मिलेगा। आपकी गति आपके धर्म में ज्यादा होगी। वैसे 'रुद्राष्टक' का भी आप पाठ करो। शंकर प्रगटेगा, शंकरकृपा प्रगटेगी। और शंकरकृपा से आपके इष्टदेव का अनुभव विशेष कर पाओगे।

आज मेरे पास एक चिठ्ठी थी कि बहनलोग 'रुद्राष्टक' कर सके कि नहीं? कर सके। सब कर सकते हैं। सबको अधिकार है। अब तीन देवियों ने 'रुद्राष्टक' गाया ऐसा आज मैंने कहा तो आप क्यों न कर सको? पार्वती ने

गाया; साथ में गंगाजी ने गाया; सरस्वती ने गाया। तो माताएं गा सकती है। तो 'रुद्राष्टक' अलौकिक है; अलौकिक है। 'रुद्राष्टक' में ज्यादा प्रलोभन नहीं दिया गया कि ये स्तोत्र गाओ तो ये मिले, ये मिले। कोई प्रलोभन नहीं दिया है। तुम गा लो, तुम्हें मिल जाएगा। तो महाकाल के प्रांगण में हम इस 'रुद्राष्टक' के द्वारा भगवान महाकाल का कुछ विशेष दर्शन कर रहे हैं। मुस्लिम भाईलोग भी 'रुद्राष्टक' गाते हैं साहब, जो हिंमतवाले हैं! मुस्लिम भाईलोग भी गाते हैं। ओसमान तो गाता ही गाता है। ओर कई गाते हैं। हमारा वो जो एक मुस्लिम लड़का है, जो जिद्द करके बैठा है कि मुझे शंकर का मंदिर बनाना है! मुस्लिम है, बोलो! रामनामी कंधे पर रख कर घूमता है। उसकी माँ, उनकी पत्नी सबको रंग लगा दिया है कि मैं शंकर का मंदिर बनाऊं! फिर जिद्द कर बैठा कि शंकर का मंदिर बने और मोरारिबापू की कथा हो! मैंने कहा, कथा तो रहने दे, मंदिर बना। कथा तो मुश्किल मामला है।

तो शिव का ये 'रुद्राष्टक' अद्‌भुत है। जीवन में कुछ हो गया उसकी निवृत्ति हो जाए। और हम पुन: प्रसन्नता में प्रस्थापित हो जाए उसके लिए 'रुद्राष्टक' है। और प्रस्थापित हुई सत्त्वता पोषित हो, दिन दूना रात चौगुना बढ़े इसके लिए 'महिम्न स्तोत्र।' और ऐसे साधना करते-करते यदि कहीं अहंकार आ गया, कहीं अभिमान आ गया, कहीं थोड़ा कचरा इकठ्ठा हो गया कि हम ये कर रहे, हम ये कर रहे उसके निवारण के लिए 'शिवतांडव नृत्य।' इन तीन का प्रयोग करता है उसको सत्त्व पुष्टि होती है, असत्त्व का नाश होता है। तो शिव, शिव है; शिव, शिव है।

तो मेरे भाई-बहन, 'रुद्राष्टक' को इस रूप में लेना आपको अनुकूल पड़े तो। मैंने तो आपके पास जो मुझे महसूस हुआ है, सो अपना समझकर आपके सामने रखा है। कोई आपका इष्टदेव, आपका मंत्र, आपकी साधना छोड़ना मत। जो भी हो, उसीमें ही रहना। लेकिन फिर भी इसको बलवत्तर करने के लिए 'रुद्राष्टक' आपको मदद कर सकता हैं। 'हनुमानचालीसा' आपको मदद कर सकती है। अन्य देवताओं का नाम अथवा तो मंत्र, उसका आप जप करे तो पुण्य बढ़ते हैं। लेकिन शंकर का नाम जपने से जो पाप हो गये हैं वो खत्म हो जाते हैं। पुण्य बढ़े ये अच्छी वस्तु है। लेकिन पुण्य बढ़े इसका मतलब ये नहीं कि पाप खत्म हो गये। पाप का दंड पाप की जगह पर रहेगा। पुण्य का फल पुण्य की जगह मिलेगा। तो देवताओं का नाम लेने से पुण्य वृद्धि होती है लेकिन हमारी पापराशि मिटाने के लिए शिव नाम ही लेना पड़ेगा साहब! नारदजी ने भगवान विष्णु को गालियां दी और इतना बड़ा संताप हुआ। तो भगवान विष्णु से नारद कहने लगे कि अब मेरा संताप मिटे कैसे? मुझसे बहुत पाप हो गये। तो विष्णु भगवान ने नारद को 'रामचरित मानस' में कहा, 'जपहु जाइ संकर सत नामा।' शंकर के सौ नाम का जाप करो, तुम्हारे हृदय में विश्राम होगा।

तो भगवान शिव की चर्चा केन्द्र में चल रही हैं। आईए, आज भगवान शिव का ब्याह कर दें कथा के क्रम में। कल के कथा के क्रम में नारदजी आये। हिमालय के घर पुत्री का जन्म हुआ। कल बनारस से फोन आया कि बापू, हमारे घर बेटी का जन्म हुआ। और आपने आज कहा कि पहली बेटी जन्मे तो बहुत बड़ी खुशी की बात है, बहुत प्रसन्नता की बात है। सात-सात विभूतियां उसमें आती है। तो बोले, हमारा पूरा परिवार जरा वो था कि बेटी जन्मी! ऐसा कुछ मन में, किसी-किसी के लिए। लेकिन कथा चल रही थी। सुना तो पूरा परिवार राजी हो गया कि लो, बापू ने कह दिया कि बेटी जन्मे वो तो अद्‌भुत! तो अच्छा है कि अवसर मिल गया। बेटी का जन्म हो उसको बहुत बधाई के साथ उत्सव मनाना। जिसके घर कन्या प्रगट होती है उनके घर कीर्ति आती है। जिसके घर कन्या जन्मती है, उनके घर में श्री लक्ष्मी आती है; समृद्धि आने लगती है। कीर्ति, श्री, वाक्; कन्या जन्मती है तो वाणी प्रगट होती है। एक निर्दोष, एक अनटच, एक बिलकुल मौलिक कुंआरी वाणी प्रगट होती है। स्मृति; घर में बेटी का जन्म हो तो समझना, हमारे कुल परंपरा की कोई याद आई है; कोई स्मृति आई है। कोई हमें कुछ स्मृति देने आया है। मेधा; जब बेटी जन्मती है तो एक मेधा, प्रज्ञा प्रगटती है हमारे घर में। धृति; कन्या आती है तो घर में धीरज आती है, धैर्य आता है। बेटी धृति है। और बेटी घर में जन्मे तो हमारे घर में क्षमा जन्मी है। हमारे कई जनम-जनम के पाप हुए हैं उसको परमात्मा ने क्षमा कर दिया है और कन्या के रूप में क्षमा हमारे घर में आई। तो हमारे यहां बिलकुल गलत एक निर्णय आ गया कि कन्या जनम लेती है तो बस मुंह बिगड़ जाता है! कहां बेटी जन्मी! सबको बस बेटा, बेटा, बेटा! और बेटी का जनम होता है, तो सब से पहले तो सास की नाक ही सिकुड जाती है! सास को होता है, अरे! बहु ने बेटी को जनम दिया! उस सास को कहना चाहिए, तू जन्मी तब तू क्या थी? तू बेटा थी? तू भी तो बेटी थी! ये बहुत बड़े उत्सव की बात है।

तो बेटी बड़ी होने लगी हिमालय की। नारदजी आये। नाम रखा। उसको कोई उमा कहेंगे; कोई भवानी कहेंगे; कोई दुर्गा कहेंगे; पार्वती कहेंगे। और ये बहुत महान होगी; पतिव्रता धर्म की आचार्य बनेगी। तुम्हारी बेटी का नाम लेने से समाज की स्त्री पातिव्रत्य धर्म की खडग धारा पर चल सकेगी। तुम्हारी बेटी का सौभाग्य अखंड रहेगा। माता-पिता बहुत खुश हुए। बोले, बताओ, वर कैसा मिलेगा? तब नारद ने कहा, तुम्हारी ये कन्या है उसको वर ऐसा मिलेगा कि जो अगुण होगा। उसमें कोई गुण नहीं होगा। बिलकुल निर्मानी होगा। और तुम्हारी बेटी को जो पति मिलेगा उसके माँ-बाप नहीं होंगे; ये अजन्म होगा। मन में कोई संशय नहीं, कोई विचार नहीं, कोई तरंग नहीं। तुम्हारी बेटी को जो पति मिलेगा वो बड़ा जोगी होगा। जटिल; आपकी बेटी को जो वर मिलेगा वो जटा रखता होगा। अकाम; दो अर्थ, एक तो निष्काम। उसको कोई विषय की पड़ी ही नहीं। और अकाम यानी कोई काम नहीं करता। जोगी, जटिल, नगन अमंगल भेष; कपड़ा पहनता नहीं है, बैठा रहता है और बाकी कुछ रखता है तो सब अमंगल रखता है। सांप, बिच्छू आदि-आदि! आपकी बेटी को ऐसा वर मिलेगा।

माँ-बाप रोने लगे कि महाराज, आप क्या बोल रहे हैं! इतनी सुन्दर कन्या! इतनी बड़ी उम्र में हमें बेटी मिली और आप ऐसे पति की बात कर रहे हैं! माँ-बाप रोने लगे! पार्वती भी रोने लगी, लेकिन पार्वती की आंख में खुशी के आंसू थे कि वरराजा के जो-जो दोष गिनाये हैं वो भगवान शंकर के पास ही है। तो मुझे मेरे शंकर ही प्राप्त होंगे। पार्वती समझ गई कि वर के जो-जो दोष बखाने हैं ये तो मेरे भोलेनाथ के पास ही है। पार्वती शिव को प्राप्त करने के लिए कठिन तप करती हैं। पार्वती तप करने लगी। तप की फलश्रुति में आकाशवाणी हुई कि हे गिरिराज पुत्री, आपकी तपस्या फलित हुई है। आपको शिव मिलेंगे।

यहां जबसे सती ने दक्षयज्ञ में देह विलीन किया, भगवान शिव का मन विशेष विरागी बन गया था। भगवान शिव का नेम और प्रेम देखकर भगवान नारायण शिवजी के सामने प्रगट हुए। भगवान नारायण ने कहा कि शिवजी, मैं आपसे मांगने आया हूं। आपने जिस सती का त्याग किया और सती दक्षयज्ञ में जल गई। दूसरा जन्म हिमालय के घर बेटी के रूप में लिया। कडी तपस्या की है आपको पाने के लिए। आकाशवाणी से वरदान भी प्राप्त कर चुकी है कि शिव मिलेंगे। तो हे भोलेनाथ, हम याचना करते हैं कि अब हिमालय जब आपको निमंत्रण दे कि आप मेरी बेटी का स्वीकार करो तब आप पार्वती का पाणिग्रहण करो; आप शादी करो।

भगवान शिव ने कह दिया कि महाराज, मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूं। भगवान अंतर्धान हुए। शिवजी जागृत बैठे हैं। शिवजी ने सप्तऋषियों को पार्वती की प्रेमपरीक्षा के लिए भेजे। पार्वती की ये अखंड निष्ठा शिव के प्रति देखकर सप्तऋषि राजी हुए। याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी को कथा सुनाते बोले कि इस अवकाश में तारकासुर नामक एक राक्षस उत्पन्न हुआ जिसने तमाम दैवी समाज को बहुत पीड़ा दी। एक बार सब दैवी समाज ब्रह्मा के पास जाकर फरियाद करता है कि तारकासुर बहुत त्रास देता है। उसका निधन कैसे हो? ब्रह्मा ने कहा, एक ही उपाय है। शिव का पुत्र ही उसको मार सकता है। तमाम देवता भगवान शिव की समाधि टूट जाए, विक्षेप हो उसकी योजना बनाते हैं। स्वयं कामदेव प्रगट होता है। और फिर भगवान शंकर पर वो कामबाण फेंकता है। ये सब प्रसंग मैं आपको कल सुनाउंगा कथा के क्रम में।

बड़ा अद्‌भुत, अलौकिक है ये 'रुद्राष्टक।' महाकाल के मंदिर में आकाशवाणी हुई। लेकिन 'रुद्राष्टक' उपरवाले आकाश से नहीं आया, ये अंदर से चिदाकाश से निकली वाणी है। ये अंदर से फूटी एक अद्‌भुत वाणी 'रुद्राष्टक' है। 'रुद्राष्टक' इन्सान की रामभक्ति को दृढ़ करता है। मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं, 'रुद्राष्टक' का पाठ कृष्णभक्ति को बल देता है। 'रुद्राष्टक' का पारायण आदमी में आह्लाद और ऊर्जाशक्ति भर देता है। मुझे बोलने में ध्यान रखना पड़ता है लेकिन जिम्मेवारी से बोलूं तो मैं कहूं, 'रुद्राष्टक' सिद्ध भी है और शुद्ध भी है।

कथा-दर्शन

- मेरी समझ में 'रुद्राष्टक' एक आध्यात्मिक प्रयोगशाला है।
- शिव कृपालु और कठोर दोनों होते हैं। गुरु केवल और केवल कृपालु होते हैं।
- विश्व में बुद्धपुरुष जैसा संवेदनशील कोई नहीं हो सकता।
- किसी बुद्धपुरुष से प्रतिष्ठा पा लेना आसान है, निभाना बहुत कठिन है।
- गुरु के बिना कोई भी उपासना सफल नहीं होती।
- पंथ भूले आश्रित को जब गुरु आवाज़ दे तब परम सौभाग्य समझना।
- साधना की किसी भी पद्धति में हनुमंततत्त्व नितांत जरूरी है।
- संत, हनुमंत और भगवंत एक आध्यात्मिक त्रिकोण है।
- संत का आश्रय करने से बहुत बड़ा आधार मिलता है।
- कहानी सुला देती है, कथा जगा देती है।
- प्राप्ति प्रसाद से ही होती है, प्रयास से होती ही नहीं।
- किसी-किसी की आंखों में साधना की गहराई का भी तेज होता है।
- शाप के लिए क्रोध करना पड़ता है, सावधान करने के लिए आदमी में बोध जरूरी है।
- प्रत्येक व्यक्ति के हृदय का मंदिर महाकाल का प्रसाद है।
- अपने इष्ट को केवल मंदिर में सीमित मत समझना।
- इर्ष्या करने से कभी मन का सुख नहीं मिलता।
- दूसरों की निंदा करने से बुद्धि कभी निर्णायक नहीं हो पाती।
- द्वेष करने से कभी किसी को चित्त की शांति नहीं मिलती।
- आस्था और अवस्था दोनों भीतर की संपदा है।
- अध्यात्मक्षेत्र चतुराई का क्षेत्र नहीं है, भोलेपन का क्षेत्र है।
- वक्ता के वक्तव्य के पीछे किसी बुद्धपुरुष का मौन बोलता है।

सत्य भी मृत्यु है, प्रेम भी मृत्यु है और करुणा भी मृत्यु है

बाप! 'मानस-महाकाल', जिसको केन्द्रीय विषय बनाकर रामकथा अंतर्गत हम कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवादी सूर में कर रहे हैं। मेरे भाई-बहन, 'रामचरित मानस' में काल के बिलग-बिलग रूप अथवा तो उसके लिए गढ़े गये शब्द, एक खोज के अनुसार 'मानस' में पचीस प्रकार के काल का वर्णन है। ये शास्त्र है। इसमें भूलचूक हो सकती है। इसीलिए जहां तक पता है तब तक पचीस रूप में काल का बिलग-बिलग रूप में वर्णन है। काल, महाकाल, काल का काल, ये सब एक अर्थ में परमात्मावाचक शब्द भी हैं। काल मानी ईश्वर। तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' में भगवान राम को भी काल कहा है। काल ही क्या, काल के काल कहा है।

नाथ राम नहि नर भूपाला।
भुवनेस्वर कालहु कर काला।।

'मानस' अंतर्गत 'सुन्दरकांड' में परम वैष्णव विभीषण अपने भाई को, दशानन को ये पंक्ति सुनाता है, हे नाथ, हे दशानन, राम केवल नर भूपाल नहीं है। जिसको 'रामायण' में सज्जन भी कहा गया है; जिसको साधु भी कह दिया; जिसको संत भी कह दिया गया। ऐसा एक साधुचरित व्यक्ति का ये निवेदन है। गोस्वामीजी के 'रामचरित मानस' में एक सज्जन विभीषण ने रावण के सामने कहा कि राम केवल मनुष्य राजा नहीं है; वो भुवनेश्वर है और काल के भी काल हैं। तो राम भी महाकाल है; काल के काल हैं। और-

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं। गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

तो राम भी महाकाल है; ईश्वर है; काल के काल हैं। और 'रुद्राष्टक' की जिन दो पावन पंक्तियों का आश्रय लेकर ये नौ दिवसीय रामकथा चल रही, उसमें महादेव काल के काल हैं। भगवान कृष्ण भी काल हैं। 'कालोस्मि', 'भगवद्गीता' में उद्घोषणा करते हैं, मैं काल हूं। तो कृष्ण भी काल है। और जरा प्रशांत और प्रसन्न चित्त से सुनियेगा मेरे भाई-बहन, अब जब राम को मेरी व्यासपीठ सत्य कहती है। मेरी व्यासपीठ कहती है मीन्स ये सनातन है। शब्द में मुझे बांधना है इसलिए 'मैं' शब्द बोलूं। उसका अन्यथा अर्थ मत करना। व्यासपीठ को कहने को जी करता है कि राम को मैं सत्य कहता हूं। कृष्ण को मेरी श्रद्धा प्रेम कहती है। इसका मतलब ये नहीं कि कृष्ण में सत्य नहीं है। कोई गलती न करे। कृष्ण के सत्य को हम समझ ही तो नहीं पाए है! उस मृतक बालक को जीवित करने के लिए छः या आठ जो श्लोक कृष्ण बोले हैं 'महाभारत' में, वहां उसके सत्य की ऊंचाई नजर आती है साहब! तो राम सत्य है। इसका मतलय ये नहीं कि राम में प्रेम नहीं है, राम मे करुणा नहीं है। लेकिन राम में प्रधानता सत्य की है। भगवान कृष्ण प्रेम है। मतलब ये नहीं कि सत्य नहीं है, करुणा नहीं है। लेकिन देखते ही इस आदमी में पहले प्रेम का दर्शन होता है। राम को देखते ही पहले सत्य का दर्शन होता है। और महादेव करुणा है। इसका मतलब ये नहीं कि वहां सत्य नहीं है, प्रेम नहीं है। ये करुणा है। 'कर्पूरगौरं करुणावतारं।' तो राम काल है। कृष्ण काल है। शिव काल है। तो ये भी कहना होगा कि सत्य भी मृत्यु है। प्रेम भी मृत्यु है। और करुणा भी मृत्यु है। इसलिए मैंने पहले कहे शब्द पर ध्यान देना, प्रसन्न चित्त और प्रशांत चित्त से सुनिएगा। क्योंकि इन सूत्रों में आपके मन में दुविधा पैदा हो सकती है कि सत्य को मृत्यु कैसे कह देते हो? प्रेम को मृत्यु कैसे कह देते हो? करुणा को मृत्यु कहना ये तो जरा मुश्किल लगता है।

सत्य मृत्यु है बाप! क्योंकि सत्य मृत्यु का पर्याय है। सुक्रात में सत्य था; मृत्यु मिली। गांधी में सत्य था; मृत्यु मिली। सत्य मृत्यु है। सत्यरूपी मृत्यु अनंत जीवनों से भी बेहतर है, बेहतर है। जरा कठिन पड़ेगा सूत्र बाप! मेरी बोली से सीधा समझ में न भी आये। तो अपने-अपने गुरु के पास जाकर जब गुरु समय दे तब उसको अवसर देखकर जिज्ञासा करना कि सत्य मृत्यु है? ये गुरु के पास पूछने की बात आई तो मैं कहूंगा; उसी समय मेरे भाई-बहन, हम और आप जो किसी न किसी बुद्धपुरुष के आश्रय में जीते हैं, प्रसन्न रह सकते हैं। गुरु मंत्र दे, दीपावली मनाओ। गुरु कोई सूत्र दे, उत्सव मनाओ। गुरु अपने पास रखे सेवा में, धन्यभाग। गुरु चरणस्पर्श करने दे, अहोभाग। गुरु चरणधूलि लेने दे, बहुतभाग। कोई गुरु चरण प्रक्षालन करवा दे, भूरीभाग। कोई गुरु चरणसेवा करवा दे, सुख है। कोई गुरु आपसे बातचीत करे, आपसे विनोद करे, बहुत बड़ा भाग्य। कोई गुरु आपके सामने मौन बैठा रहे तो समझना बहुत बड़ा भाग। कोई गुरु, आप गुरु से लाख विपरीत हो लेकिन करुणा करके सामने से तुम्हें बुलाये कि कहां हो तब समझना इसके समान विश्व में कोई भाग्य नहीं।

ये भुशुंडि का प्रसंग है। गुरु ने कागभुशुंडि को पढ़ाया, पुत्र की भांति पढ़ाया। शिवमंत्र दिया। शुभ उपदेश दिया। रोज प्रबोध करे, नीति समझाये गुरु भुशुंडि को। लेकिन उसको क्रोध आता था। और जब गुरु ये कहे कि शिव और नारायण एक है, तू निंदा न कर। और शिव और ब्रह्मा भी राम की पूजा करते हैं, हरि सेवक है; ऐसा जब गुरु कहते तब तो इसका इतना द्रोह पैदा होता था, जल जाता था! गुरुद्रोह, द्विजद्रोह, हरिद्रोह, सबके द्रोह में वो जल जाता था! तो मंदिर में आमने-सामने होते तो भी गुरु के सामने नहीं देखता था कि कहीं बोध शुरू कर दे। कहीं नीति उपदेश शुरू कर दे। कहीं जो मुझे अच्छा नहीं लगता कि हर हरि का सेवक है, ये सूत्र फिर दोहराये। मंदिर में तो रोज आता था। पूजा होती थी। लेकिन टालता था। एक समय ऐसा आया, गुरु जब मंदिर में पूजा करने जाए तब भुशुंडि नहीं जाता था! समय बदल दिया इस आदमी ने! शिष्य कभी-कभी अपने हठाग्रह, अपनी जिद्द के कारण कितने नीचे चले हैं ये उसका प्रमाण है। बड़ी दुःखद घटना तो ये हैं कि उज्जैन में भुशुंडि को लगे कि गुरु निकल रहे हैं तो भुशुंडि गली बदल देता था! हद कर रहा था! उपेक्षा की कोई सीमा नहीं थी! और इधर बुद्धपुरुष की ओर से भी अनुग्रह की कोई सीमा नहीं थी।

कुछ समय हो गया। एक बार भुशुंडि का गुरु महादेव की पूजा में नियत समय पर बैठा है। महाकाल के सामने 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम्...' मंत्र के बाद मंत्र चल रहा है। लेकिन आज शिव उसकी स्मृति में नहीं है। केवल जिह्वा पर मंत्र है। कहीं मन नहीं लगता है भुशुंडि के गुरु का। जार-जार आंसू बहाने लगे। क्यों? उसको भुशुंडि की याद सता रही है। क्यों नहीं आता? कितने दिन हुए मैने उसे देखा नहीं। एक गुरु में हजारो माँ होती है प्यारे! जिसको गुरु मिल जाता है उसकी माँ कभी मरती नहीं। जिसको गुरु मिला उसका बाप कभी मरता नहीं। तो समर्पित साधक के लिए गुरु मरता नहीं। मरे वो गुरु नहीं। शरीर की तो बात ओर है। शरीर का तो अपना धर्म है। शरीर तो मरणधर्मा है। तो भुशुंडि कुछ दिन में समय बदल देता हैं। गुरु से आंख नहीं मिलाता है। गुरु के प्रति खबर नहीं, क्या हो गया इस आदमी को! और ये संभावना भी है। धन मदमत्त। उग्र बुद्धि हो गई थी। उर में दंभ है। गोस्वामीजी के 'उत्तरकांड' में लिखे गये मानसिक रोगों में कितने रोग इस आदमी में दिखते हैं! और जिस वैद से ये रोगों की निवृत्ति हो सकती है ये वैद जिस गली से निकलता है, ये आदमी गली बदल देता है! तो ये गुरुद्रोह कर रहा था। कुछ दिन बीते और गुरु उसको बुलाते हैं, तेरे बिना मेरा मन शिव में नहीं लग रहा! मेरा पूजा-पाठ केवल क्रिया या तो यंत्रवत् होता जा रहा है! पंथ भूले आश्रित को जब गुरु आवाज़ दे तब परम सौभाग्य समझना। फिर मुझे

फिल्म की पंक्ति याद आ जाती है। ये शिष्य भी गा सकता है और शिष्य को हृदय में रखनेवाला गुरु भी गा सकता है।

अकेले हैं चले आओ जहां हो,
अकेले हैं चले आओ जहां हो।
कहां आवाज़ दे तुमको कहां हो?
अकेले हैं चले आओ जहां हो।

साहब! भाव का परिवर्तन करके यदि ये पंक्ति गाओगे तो ये गोपीगीत है। संस्कृत में नहीं है, हिन्दी भाषा में है। कोई शास्त्र में आये शब्द नहीं है। कोई शायर के दिल की नीपज है। लेकिन उपयोग हो गया चलचित्र में। सोने की लगडी, सोने का सिक्का कीचड़ में गिर जाए प्रारब्धवश अथवा तो किसी हेतुवश तो सोना लोहा नहीं हो जाता। वहीं से निकालकर साफ़ करो, तो सोना ही है। मेरी दृष्टि में कोई भी शे'र, कोई भी शायरी, कोई ग़ज़ल, कोई दोहा, कोई छंद, कोई भी प्रादेशिक लोकसाहित्य, कोई नाटक का गीत या कोई फिल्म की पंक्तियां यदि ईश्वर की ओर ले चलती है तो गोपीगीत है। इस भाव से गाओ।

तो यहां मेरे सूत्र आपकी समझ में न आये शायद तो अपने बुद्धपुरुष को पूछना कि बापू ने कहा था कि सत्य मृत्यु है, ये सही है कि गलत है? और मैं तो कहता रहूंगा, सत्य मृत्यु है। और ये मृत्यु अनंत-अनंत जन्मों से बेहतर है। तो सत्य है मृत्यु; भगवान राम। दूसरा भगवान कृष्ण। कृष्ण है मृत्यु। 'कालोस्मि लोकाक्ष्य प्रबुद्धो।' ये मृत्यु है। और कृष्ण को मेरी व्यासपीठ जब प्रेम कहती है तो सीधा-सादा अर्थ है मेरे श्रावक भाई-बहन, प्रेम है मृत्यु। और 'महाभारत' में कभी मृत्यु के मारे बें पढ़ लेना। हमको मृत्यु भयावह लगती है। हमें मृत्यु से डर लगता है। ठीक है, व्याख्या तो मैं कर लेता हूं। लेकिन मौत आये तो सबको डर लगता है। लेकिन 'महाभारत' पढ़ने के बाद ढाढस भी मिलती है। एक हौंसला बढ़ता है। वहां लिखा है, मृत्यु एक सुंदर रमणीय स्त्री है। इतनी सुंदर स्त्री है मृत्यु, 'महाभारत'कार कहता है कि गर्दन उधर करने की इच्छा होती है कि मृत्यु हमारा वरण कर ले! मृत्यु हमारे गले में माला पहना दे! इतनी सुंदर स्त्री के रूप में मृत्यु की बात भारत ही कर सकता है। मृत्यु को इतना सौन्दर्य हिन्दुस्तान ही दे सकता है; 'महाभारत' ही दे सकता है; मेरा व्यास ही दे सकता है।

जिन्होंने सत्य की राह पकड़ी है उसको लोगों ने जीने कहां दिया? किसीको सूली पर चढ़ा दिया! किसीको जहर पिला दिया! किसीकी गर्दन काटी गई! किसीको हिजरत करना पड़ा! क्या-क्या हुआ? 'सत्य' है मृत्यु का सगोत्री शब्द। प्रेम है मृत्यु। मीरां ने प्रेम किया, क्या मिला? ज़हर! सर्मद नाचा, 'अनल हक, अनल हक।' मन्सूर नाचा 'अनल हक।' क्या मिला? मृत्यु! ओर कोई गुनाह तो नहीं किया था! मोहब्बत की थी। प्यार किया था। वो प्यार हां, ये आज-कल संसार में जो बिलकुल हल्फा-फूल्का सस्ता 'प्रेम' शब्द को कर दिया वो नहीं। वो तो प्रेम है ही नहीं, वहम है! सबसे बड़ा वहम है! प्रेम काहे का? प्रेम मृत्यु है। गाते-गाते मर जाना प्रेम का नाम है। सच बोलते-बोलते मर जाना सत्य का नाम है। करुणा करते-करते मृत्यु हो, आश्लेष करना, ये मृत्यु का नाम है। तो प्रेम है मृत्यु। प्रेम में थोड़ी होशियारी करोगे तो जी जाओगे। बाकी आरपार और भोलापन रखा तो मर जाओगे!

बाप! प्रेम है मृत्यु। सत्य है मृत्यु। ये थोड़ा समझ में भी आएगा। लेकिन करुणा है मृत्यु, ये तो जरा और बाध्य कर देगा सोचने के लिए कि करुणा मृत्यु! हां, मृत्यु। कभी-कभी हम कितने ही क्रूरकर्मा हो लेकिन गुरु की करुणा इतनी उतरती है तो नहीं लगता कि तेरी करुणा ने हमें मार डाला! तू बस कर, अब बस कर! अब नहीं सहा जा रहा है! करुणा बन जाती है मृत्यु; इस अर्थ में । इच्छामरण है कागभुशुंडि। उसकी मृत्यु वो चाहे तो ही हो सकती है। फिर भी भुशुंडि के ये सद्गुरु ने, ये बुद्धपुरुष ने ये अमर को, ये इच्छामरण को बार-बार नहीं मारा? 'गुरु कर कोमल सील सुभाउ।' ये जो उनकी करुणा थी; ये उनकी निर्दोषता थी; उसकी दयालुता थी। तो गुरु बुलाते हैं कागभुशुंडि को। समझाते हैं, बहुत प्यार देते हैं। लेकिन उनकी जो वो गति होती चली, होती चली, होती चली! और आखिर में वहां तक ये अविवेक गति कर गया कि फिर भुशुंडि गुरु के समय पर आने तो लगा फिर भी मन में तो वो रहता था, द्रोहवाला भाव! इनमें एक दिन-

एक बार हर मंदिर माहिं जपत रहेउं सिव नाम।
गुरु आयउ अभिमान ते उठि नहिं किन्ह प्रनाम।।

भुशुंडि कहते हैं, मैं पूजा में था महाकाल के मंदिर में और मेरे गुरु पधारे तो मैंने उठकर उसको प्रणाम नहीं किया! अनदेखा कर दिया! शास्त्र और श्रद्धा का एक नियम है कि आप मंदिर में भगवान की पूजा करते हो और उसी समय आपके गुरु आ जाए तो जो पूजा भगवान को चढ़ाने की बाकी है वो भगवान को चढ़ाना बंद करके गुरु के चरणों में चढ़ाई जाती है। भारत की गुरु-शिष्य परंपरा अद्भुत है!

लेकिन आज भुशुंडि ने बहुत बड़ा अपराध किया! बहुत बड़ा अपराध किया! और कोई चारा नहीं था! हाहाकार हो गया! महाकाल के मंदिर में नभवाणी हुई! गुरु अपमान गुरु तो सह गया; उसको तो अपमान जैसा लगा भी नहीं होगा; लगना भी नहीं चाहिए। वर्ना प्रतिक्रिया जीव स्वभाव में हो ही जाती है। लेकिन महादेव सह नहीं पाए और भयंकर शाप की आवृत्तियां शुरू हो गई तब आंख में आंसू गिर रहे हैं और भुशुंडि के कृपालु गुरु ने 'रुद्राष्टक' का गायन शुरू किया।

ये अष्टक क्यों, इसके बारे में कल हम थोड़ा विचार कर रहे थे। क्यों अष्टक गाया? क्योंकि भगवान शिव हैं अष्टमूर्ति। इसलिए अष्टक गाया। भगवान शिव के दरबार में ये भुशुंडि ने आठ अपराध किये हैं। इसलिए आठ अपराधों से मुक्त करने के लिए अष्टक गाया। शास्त्र कहता है, 'अष्टपाशा प्रकीर्तिता।' पाश आठ होते हैं। और इन पाश से सद्गुरु अथवा तो त्रिभुवन गुरु, शिव मुक्त कर सकते हैं। इसलिए आठ पाश से अपने आश्रित को मुक्त करने के लिए गुरु ने अष्टक गाया। भगवान महाकाल ने रोष में आठ प्रकार के संबोधन किये कागभुशुंडि को इसीलिए अष्टक गाया। तो कल मैंने सूत्रपात कर दिया कि मैं 'रुद्राष्टक' देखता हूं तो मुझे उसमें पतंजलि का अष्टांग योग भी नजर आता है इसीलिए अष्टक गाया। मृत्यु की छाया आठ मानी जाती है। काल की आठ छाया मानी जाती है इसलिए अष्टक गाया। एक, जिसको हम ध्रुव मृत्यु कहते हैं, निश्चित; ये काल की छाया है। दूसरा, अपमृत्यु काल की छाया मानी गई। तीसरा, कोई किसी की हत्या कर दे ये काल की छाया मानी गई। चौथा, कोई व्यक्ति मजबूरी से आत्महत्या कर दे; काल की छाया। किसीको इतना डरा दिया जाए, इतना भयकंपित कर दिया जाए तो मर्यादा से बाहर का भय, सीमा से बाहर का भय काल की छाया है। ये काल की छाया मानी गई हैं। कभी-कभी आदमी किसीकी मृत्यु करे वो उनका खेल बन जाता है! खेल-खेल में मृत्यु! जैसे दुनियाभर में आतंकवाद खेल-खेल में मृत्यु कर देगा! ये काल की एक छाया है। कोई कारण नहीं है। खुद भी मरे, दूसरों को भी मारे!

छठ्ठी काल की छाया है व्याधि, बीमारी। रोग मृत्यु की छाया मानी गई। महामारी, उसको मृत्यु की छाया कहा गया है। शास्त्रकारों ने बहुत चिंतन किया है। मजाक भी काल की छाया है! आप कभी किसीकी मजाक कर देते हो, वो उनकी मृत्यु का कारण बन सकती है। ये छाया है काल की। आठवीं और अंतिम काल की छाया है प्राकृतिक घटना। कभी अकाल, कभी सुनामी, कभी भूकंप! ये काल की छाया बनकर आते हैं। आठ प्रकार की काल की छाया हैं। इस छाया से मुक्त करने के लिए ये सद्गुरु अष्टक गाने लगा है। भगवान शंकर के लिए आठ शब्दों का संबोधन 'रुद्राष्टक' में हुआ है, इसलिए अष्टक है। एक तो पुरारी। दूसरा मन्मथारी। तीसरा भवानीपति अथवा उमानाथ, एक ही है। चौथा शंकर। पांचवां शिव। और तीन बार शंभु आया है। आठ बार भगवान शंकर के प्रति संबोधन हुआ है। इसीलिए ये अष्टक है। आप सुनिए, ये भुशुंडि का शिव भी माफ न कर पाये, बाद में तो ये गुरुकृपा से सब हुआ, ऐसा अपराध, ये अष्टमी के दिन हुआ था। और आप हैरान हो जाओगे, ये अष्टमी भी कृष्णाष्टमी, सावन कृष्ण अष्टमी का दिन था! और इससे भी महत्त्व की बात है कि इस कृष्ण अष्टमी के दिन ये बुद्धपुरुष महाकाल के मंदिर में शिव की आठों प्रहर की पूजा करने बैठा था। वैदिक पूजा चल रही थी आठों प्रहर। अब जन्माष्टमी मैंने कहा, इसमें दो मत हैं। कहीं-कहीं ऐसी धारणा बताई गई है कि वो अष्टमी माघ कृष्ण अष्टमी थी। मेरी अंत:करण की प्रवृत्ति सावन को कुबूल करती हैं। जो हो।

तो भगवान महाकाल के मंदिर में इस बुद्धपुरुष ने अष्टक गाया उसके कई कारण महसूस हो रहे हैं। आईए, इस 'रुद्राष्टक' में हम भी अपना सुर लगायें भाव से। आप सबको याद हो तो आप सब साथ में गाईयेगा। सोचिए, सिंहस्थ के महापर्व में हम महाकाल कें मंदिर में बैठे हैं।

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।
निराकारमोंकार मूलंतुरीयं। गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

मैंने कई बार आपसे बात की है कि मैंने जीवन में यदि कोई स्तोत्र पहला सीखा हो तो वो 'रुद्राष्टक' है। जब दादाजी रामकथा चरण में बैठ कर मुझे दे रहे थे, तो इससे पूर्व आपका प्रेमादेश था कि पहले 'रुद्राष्टक' कंठस्थ करो। उसके बाद चौपाइयां शुरू होगी। तो ये मेरे जीवन की बड़ी प्यारी घटना है। फिर मैं जो दूसरा स्तोत्र सीखा था वो है 'रामरक्षास्तोत्र।' ये मेरा दूसरा स्तोत्र था जीवन की यात्रा में। महाकाल के मंदिर की ये घटना, मैंने सावन कृष्ण अष्टमी इसीलिए कही कि अंत:करण की प्रवृत्ति का प्रमाण ही ज्यादा माना जाये। लेकिन एक तो गुरुवचन पर भरोसा होना चाहिए। क्योंकि 'मानस' कहता है, जिसको गुरु के वचन

पर प्रतीति नहीं उसको सपने में भी सुख और सिद्धि सुलभ नहीं। सुख की मेरी व्याख्या है, स्वान्तः सुख। बाकी सुख तो प्रारब्ध और पुरुषार्थ से मिलते रहते हैं। आते-जाते रहते हैं। यहां 'सुख' शब्द आत्मसुख अथवा तो मेरे गोस्वामीजी जिसको 'निजसुख' कहते हैं। गुरु के वचन पर जिसको भरोसा नहीं उसको अपने में सुख नहीं मिलता, जिसको निजसुख कहा गया; गुरु के वचन पर जिसको भरोसा नहीं उसको ऐसा सुख नहीं मिलता। और सिद्धि नहीं मिलती।

सिद्धि कौन है मुझे खबर नहीं। शास्त्रों में पढ़ा है। संतों से सुना है कि अष्ट सिद्धियां होती हैं। नौ निधियां होती हैं। जो हनुमानजी उसके दाता हैं क्योंकि माँ ने उसको आशीर्वाद दिया था। वर्णन पढ़ा भी है। सुना भी। लेकिन मैं व्यक्तिगत रूप में तो सोचता हूं कि सिद्धि मानी आठ प्रकार की शुद्धि। ये गुरु वचन पर भरोसा किये बिना नहीं आती। तो गुरु के वचन पर जिसको भरोसा नहीं उसको न आत्मसुख मिलता है न अष्ट शुद्धियां प्राप्त होती हैं। सिद्धियां तो मिलती हैं। ध्यान देना भाई, मैं कोई इन्कार नहीं करता। सिद्धियों का वर्णन हमारे यहां है। हनुमानजी का चरित्र हम गाते हैं। तो हनुमंत बाबा में सभी सिद्धियां नजर भी आती हैं। लेकिन हम जैसों की कहां ये सिद्धियां! शुद्धि हो तो काफ़ी है। तो गुरु के वचन पर भरोसा। ये बहुत बड़ी बात है।

तो 'लंकाकांड' तक की मेरी यात्रा थी रामकथा की। फिर तो आगे दादाजी का शरीर शांत हो गया। लेकिन आखिर में दादा कहते थे बेटा, जिस दिन भुशुंडि ने अविवेक किया और महाकाल कुपित हुआ और बुद्धपुरुष ने 'रुद्राष्टक' गाया उस दिन इस साधु ब्राह्मण का जन्मदिन था। साधु तो कोई भी दिन हो 'भूरिदा जनाः' होता है। लेकिन जब इस बुद्धपुरुष का जन्मदिन होगा उसी दिन शंकर कुपित हुआ है। उसी दिन आश्रित ने अविवेक किया है। गुरु अपमान किया है। तब स्वाभाविक था जन्मदिन के अवसर पर तो उपहार ही दिया जाएगा। आशिष ही दी जाएगी। करुणा ही उडेली जाएगी। तो ये पक्ष मुझे सब से ज्यादा प्रिय है। तो वो दिन था बुद्धपुरुष का प्रागट्य दिन। लेकिन 'गुरु के बचन प्रतीति न जेहि।' राज कौशिक का एक शे'र है-

उसने देखते ही दुआओं से मुझे भर दिया।
मैंने तो अभी सजदा भी नहीं किया था।।

मैंने तो प्रणाम भी नहीं किया था! यदि आप गुरुमार्गी है। किसी बुद्धपुरुष की शरण में आपकी अखंड प्रसन्नता है। वचन पर भरोसा रखिएगा। गुरु शायद वचन न निभा सके। और वचन में दो वस्तु याद रखना, श्रावक भाई-बहन। मेरे पास एक प्रश्न था, वचन दिया जाता है कि लिया जाता है? बड़ा प्यारा प्रश्न था। वचन जब कोई प्रसन्नता से देता है तब उसके पीछे मोहब्बत का दबाव होता है। मोहब्बत वचन देती है। चिंता मत करिए। ये होगा, ये होगा। और मजबूरी वचन लेती है। बोलो, वचन दो। वचन दो, वचन दो। ये मजबूरी है। वचन दिया जाता है। वचन मांगा नहीं जाता, दिया जाता है। दशरथजी राजी हो गये सुरासुर संघर्ष में। देवासुर संघर्ष की जो बात आई। और उसने सामने से कैकेई को वचन दे दिया। लेकिन कुसंग के द्वारा जब वृत्ति बदली और कैकेई वो मांग रही है तब दशरथजी जरा मुश्किल में फंसे! वचन की बड़ी महिमा है। हमारी गंगासती तो कहती है-

वचन विवेकी जे नरनारी पानबाई!
तेने ब्रह्मादिक लागे पाय;

तो गुरु के वचन में जिसको भरोसा नहीं उसको सपने में भी सुख-सिद्धि नहीं। तो 'रुद्राष्टक' गाया गया था बुद्धपुरुष ने अपने जन्मदिन के समय अष्ट प्रहर महाकाल की पूजा में। आठ प्रहर की पूजा इसलिए अष्टक है ये।

तो 'मानस-महाकाल।' बस, हम सब शिवपूजा कर रहे हैं भगवान की शिबिर में बैठकर। महाकाल का अभिषेक कर रहे हैं। गुरुकृपा से कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवादी सूर में कर रहे हैं। आगे का संवाद कल पर लिए चलता हूं। थोड़ा कथा का क्रम। कल तक कथा जहां तक ले चुका था वहीं से थोड़ा आगे बढ़ें। श्री हनुमानजी 'सुंदरकांड' में विभीषण के घर में प्रातःकाल में पहुंचे। विभीषण और हनुमानजी मिले। एक-दूसरे का परिचय हुआ। तो फिर विभीषण बड़ी प्यारी पंक्ति बोलता है 'मानस' में आप जानते हैं।

अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता।।

अब मुझे पूरा भरोसा हो गया कि राम की कृपा मुझ पर हो गई। हनुमानजी ने कहा भाई, कैसे तूने मान लिया कि राम की कृपा हो गई? बोले, राम की कृपा बिना संत नहीं मिलते। आप संत हो, आप मिले हो। तो बात पक्की हो गई कि मुझ पर कृपा हो गई। श्री हनुमानजी ने कहा कि तेरे जैसा आदमी पर राम कभी भी कृपा नहीं करेगे। तो विभीषण ने कहा कि मैं 'राम राम' बोलता हूं और राम कृपा न करें? बोले, केवल 'राम राम' बोले उस पर राम कृपा नहीं करते। तो? 'राम राम' बोले और राम का काम करे। जिस राम का नाम तूं लेता है उसी राम की आह्लादिनी शक्ति, मेरी माँ जानकी, उसको तेरा भाई अपहरण कर ले आया हैं। बंदी बन रखी है। रावण को तू नहीं कहता कि ये सीता को छोडो। राम बोलना और रामकाम न करना तेरे पर कृपा नहीं हो सकती। विभीषण ने कहा, अब मैं कल से रामकाम शुरू कर दूं। रामनाम भी लूं और रामकाम का संकल्प। तो हनुमानजी ने कहा, तब भी कृपा नहीं होगी। तो क्या होगा?

सुनहु बिभीषण प्रभु के रीति।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।

फिर कृपा नहीं, राम तुझ पर प्रेम करेंगे। काम शुरू कर। भाईयों-बहनों, मेरे श्राताओं, रामनाम और रामकाम का समन्वय होना राष्ट्र में अत्यंत, नितांत जरूरी है। पूजापाठ करते समय स्वच्छ कपड़ें पहनकर पूजा में बैठता हो तो अपनी गली, अपना मोहल्ला, अपना प्रदेश, अपने नगर, अपने राष्ट्र को स्वच्छ रखो। गांधीजी की स्मृति में राष्ट्र पूरा स्वच्छता अभियान चला रहा हैं। ये हम पूजा में बैठे उस समय कितनी स्वच्छता अगल-बगल में करते हैं? पूरे राष्ट्र की स्वच्छता। ये रामकाम है।

मैं तो ये पहले से बोल रहा हूं। ये कोई मेरा नया एजन्डा नहीं है। लेकिन राजकीय क्षेत्रवाले आदरणीय महानुभाव मुझे फोन करके भी कहते हैं। बापू, हमारी बात इतनी नहीं पहुंच रही है, आप जब कथा में ऐसा कहोगे तो ज्यादा बात पहुंचेगी। मैं कहता हूं कि मैं पहले से ही कहता रहा हूं। हमने खुद ने सफाई की है बचपन में गांव की। लेकिन ये हम सबको काम करना होगा मेरे भाई-बहन। जिसमें राष्ट्र का गौरव बढ़े। हमारी राष्ट्रप्रीति बढ़े। हमारा ये अध्यात्म जो है इसकी ध्वजा फहरती है। लेकिन और फहरे। इसके लिए रामकाम जरूरी है राष्ट्र में। जिस क्षेत्र में जो हो। परमात्मा ने जिसको जो स्थान दिया हो इसका सदुपयोग हो अहंकार से मुक्त हो कर।

तो बाप! थोड़ा आगे बढ़ें कि भगवान शिव पार्वती की प्रेम परीक्षा के लिए सप्त ऋषियों को भेजते हैं। सप्त ऋषि पार्वती की तपस्थली पर जाकर प्रेम की परीक्षा करते हैं। सप्तऋषि प्रसन्न हुए। भगवान शिव से कहते हैं कि पार्वती अखंड, अद्भुत शरणागति है। आप भवानी का स्वीकार करें। पार्वती के प्रेम की गाथा सुनते ही शिव को समाधि लग गई। प्रेम में भी ताकत है समाधि देने की। पतंजलि के द्वारा आखिर में समाधि। यहां भगवान शिव पार्वती के प्रेम की गाथा सुनकर समाधिस्थ हो गये। योग से भी समाधि उपलब्ध हो सकती है। प्रेम से भी हो सकती है। जिसको जो राम रास आये। जिस पर जैसी गुरुकृपा।

भगवान शिव समाधि में। और अंतराल में तारकासुर नामक एक राक्षस हुआ जो पूरे समाज को परेशान करने लगा। सब देवता बहुत दुःखी हुए। पितामह ब्रह्मा के पास जाकर देवताओं ने प्रार्थना की। ब्रह्मा ने कहा, एक उपाय है। शिव का बेटा ही उसको मार सकता है। आप ऐसा करो, कामदेव को भेजो, शिव की समाधि में विक्षेप करो। और शिव जाग जाये तो हम सब जायेंगे। अब देवताओं का तो एक स्वभाव भी रहा कि दूसरों की समाधि तुड़वाना! ये स्वार्थी लोग है। इन्द्रादि देवगणों ने योजना बनाई। और कामदेव प्रगट हुआ। कामदेव शिव समाधि में क्षोभ के लिए आगे बढ़ता है। सबके मन को कामदेव ने हर लिया। कामदेव शिव की समाधि में विक्षेप करता है। तीसरे नेत्र से शिव देखते ही काम जल गया! भगवान शंकर जाग्रत बैठे हैं। स्वार्थी देवगण आते हैं, फुसलाते हैं, स्तुति करते हैं। और शादी के लिए बाबा को राजी कर देते हैं। फिर बाबा की शादी के लिए तैयार होते हैं। उस कथा को मैं कल गाउंगा।

> सत्य भी मृत्यु है। प्रेम भी मृत्यु है। और करुणा भी मृत्यु है। सुक्रात में सत्य था; मृत्यु मिली। गांधी में सत्य था; मृत्यु मिली। जिन्होंने सत्य की राह पकड़ी है उसको लोगों ने जीने कहां दिया? किसीको सूली पर चढ़ा दिया! किसीको जहर पिला दिया! किसीकी गर्दन काटी गई! किसीको हिजरत करना पड़ा! प्रेम है मृत्यु। मीरां ने प्रेम किया, क्या मिला? ज़हर! सर्मद नाचा; मन्सूर नाचा; क्या मिला? मृत्यु! प्रेम है मृत्यु। सत्य है मृत्यु। ये थोड़ा समझ में भी आएगा। लेकिन करुणा मृत्यु? हां, कभी-कभी हम कितने ही क्रूरकर्मा हो लेकिन गुरु की करुणा इतनी उतरती है तो नहीं लगता कि तेरी करुणा ने हमें मार डाला! इस अर्थ में करुणा बन जाती है मृत्यु।

गुरु को साध्य के बदले साधन बनाना गुरु-अपराध है

'मानस-महाकाल', जिसकी कुछ गुरुकृपा से, कुछ ग्रंथ अवलोकन से, संतों के पास बैठकर जो सुना, पाया 'क्वचिदन्यतोऽपि।' आपके सामने सात्त्विक-तात्त्विक संवादी सूर में बातचीत हो रही है। कुछ आगे बढ़ें। आईये, हम सब फिर एक बार प्रवेश करें महाकाल के मंदिर में जहां एक बुद्धपुरुष बैठा है। और एक दस-दस प्रकार के जिसने गुरु के अपराध किये हैं ऐसा एक शिष्य। मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि आज का महाकाल के मंदिर में भुशुंडि का जो प्रवेश है वो आखिरी बार का प्रवेश है। उसके बाद प्रवेश नहीं हो पाया। क्योंकि उसके बाद ब्राह्मण शरीर में लोमस का शाप प्राप्त करते हैं और कौआ बन जाते हैं। दूसरे अर्थ में कहूं तो भुशुंडि का महामृत्यु में अब प्रवेश नहीं होगा। अब इच्छामृत्यु हो गया। स्वयं के बचन सुनिए तो-

तजउं न तन निज इच्छा मरना।
तन बिनु बेद भजन नहिं बरना।।

हे गरुड, मैं अब ये कौए का शरीर छोड़ना नहीं चाहता। मुझे गुरुकृपा से, महादेव की कृपा से इच्छामरण का वरदान प्राप्त हुआ है। और मैं इसलिए भी ये शरीर छोड़ना नहीं चाहता क्योंकि शरीर के बिना भजन नहीं होगा। वेद ने कहा कि बिना शरीर भजन कैसे करोगे? कोई बुद्धपुरुष की भाव से या कुभाव से कैसे भी, संनिधि प्राप्त हो जाए उसको मरण कैसा? उसकी मृत्यु कैसी? शरीर की बात ओर है। शरीर छोड़ दे। शे'र सुनिएगा-

है जान उसी के पास सांसें हैं उसी के पास।
देखा उसे तो रह गई आंखें उसी के पास।

और शे'र सुनिएगा मेरे भाई-बहन-

बुझने से जिस चिराग ने इन्कार कर दिया।
चक्कर काट रही हैं हवाएं उसीके पास।

जो कहता है हम नहीं बुझेंगे, हवा खाक बुझा सकती है? किसी बुद्धपुरुष की शरण मिले।

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतं गमय।।

जो हमारी औपनिषदीय घोषणा है बाप! अब भुशुंडि काल के मंदिर में नहीं प्रवेश करेगा। और शिव तो क्रोधी, कुपित हो गए हैं वहां। अपराध किया भुशुंडि ने। लेकिन उसके गुरु को बहुत पीड़ा हुई थी कि ये आदमी कभी लौटेगा नहीं। कभी पूछा था भुशुंडि को किसी ने कि अब तू लौटकर नहीं आएगा? कहा, नहीं। और फिर किसी ने शिव को पूछा था, लौटके नहीं आया तो? शिव ने कहा, मैं वहीं जाउंगा। मैं हंस का रूप लेकर कौए की शरण में जाउंगा। ये है क्रांति इस देश की। ये है इस देश की प्रवाही परंपरा। त्रिभुवन गुरु एक कौए के पास कथा सुनने आखिरी पंक्ति मैं बैठता है। अब तू मत आना महाकाल, अब मैं आउंगा। अद्भुत कथा है। अलौकिक कथा है। तो मेरे भाई-बहन, ये आखरी बार का मेरे भुशुंडि का प्रवेश है महाकाल के मंदिर में। रोया होगा महाकाल। तो-

एक बार हर मंदिर जपत रहेउं सिव नाम।

'एक बार हे गरुड, मैं मंदिर में गया।' और प्रशांत चित्त से सुनिएगा आप। जब गुरु से आश्रित को द्वेष होता है और गुरुद्रोह शुरू होने लगता है तब गुरु की हर एक बात को वो बदलने लगता है। क्योंकि मूल बात बदली तो नहीं जा सकती। लेकिन मूल वस्तु को चतुराई से बदलता है। किसी के आश्रित कहलाना है तो जिम्मेवारी बहुत है। फोटो खिंचवा लेना आसान है। किसी बुद्धपुरुष से प्रतिष्ठा पा लेना आसान है, निभाना बहुत कठिन है। ये आदमी इतना द्वेष से भर गया। यद्यपि शिव के प्रति उसकी निष्ठा में कोई कमी नहीं। लेकिन गुरुद्रोह से भर गया! तो गुरु ने तो उसे शिव मंदिर में शंभुमंत्र की उपासना को कहा था। लेकिन ये शब्द बदल देता है। ये आदमी सिफ़्त से शब्द बदल रहा है! जैसे कि हम किसी की बात सुनकर उनका नाम हटाकर होशियारी से हमारा नाम लगा देते हैं! चिंतन दूसरे का, नाम हमारा! ये जो प्रज्ञाचोरी होती है समाज में! ये स्पर्धा और द्वेष के कारण होती है। आदमी को दूसरे के विचारों की चोरी करने की आदत-सी लग गई है और अपने नाम से चिंतन बढ़ा देते हैं! क्योंकि द्वेष और स्पर्धा दोनों के कारण होता है। जिसका हो उसका नाम लो। क्या छोटे हो जाएंगे हम? तो मंदिर तो नहीं बदल जाएगा। लेकिन शिव मंदिर के बदले कहता है, 'एक बार हर मंदिर।' और शिवमंत्र छोड़ दिया। मंत्र तो शिव का ही रहा। शंभु मंत्र छोड़ दिया। 'जपत रहेउं सिव नाम।'

गुरु आएउ अभिमान ते।
उठी नहीं किन्ह प्रनाम।।

भुशुंडि कहते हैं, हे खगराज, अभिमान के कारण मैं उठा नहीं। गरुड ने पूछा, भगवन्, आप आंखें बंद करके शिव नाम जपते थे कि आपने देखा नहीं? बोले नहीं, देखा तो जरूर। लेकिन अनदेखा किया। देखा था, अनदेखा कर लिया। और तो फिर आप उठे क्यों नहीं? तो गरुड पूछते हैं, बाबा, आप क्यों नहीं उठे? अब क्या जवाब देता है? 'अभिमान ते।' अभिमान ने मुझे दबाये रखा कि तू क्यों उठता है? तेरा गुरु तो हर जगह भटकता है। शिव को भी मानता है, विष्णु को भी मानता है। तू तो एकनिष्ठ है। तू तो केवल शिव का ही उपासक है। तुझे उठने की जरूरत नहीं। उठे तेरा गुरु। उठे महाकाल। अभिमान से आदमी उठ नहीं पाया था।

तो ये आदमी द्वेष के कारण सब बदल रहा है; भयंकर गुरु अपराध कर रहा है। मैं डराने के लिए नहीं कहता। हम जैसे किसी न किसी बुद्धपुरुष के आश्रित से कहीं अपराध न हो जाये इसीलिए केवल अपना समझकर मैं आपसे बातें करता हूं। मुझे लगता है ये आवश्यक है कि गुरुजनों के दस अपराध से हम बचें। प्लीझ, डराने के लिए नहीं कहता हूं। अन्यथा मत लेना। लेकिन सावधानी के लिए। क्योंकि आज-कल लोगों को गुरुजनों के पास जाने की बहुत एक प्रकार की पिपासा जगी। खासकरके युवानों में देखो। और वो थोड़े सावधान रहे तो इक्कीसवीं सदी में जीवंत बुद्धपुरुषों से बहुत पा सकते हैं।

तो मेरे भाई-बहन, दस अपराध। एक, गुरु के साथ अद्वैत संबंध रखना गुरु अपराध है। गुरु के साथ सदैव द्वैत होता है; ये मेरा गुरु, मैं उनका आश्रित। ये मेरा सांई, मैं उनका सेवक। ये मेरा मालिक, मैं उनका किंकर। वो मेरा बाप, मैं उनका वत्स। गुरु शिष्य से अद्वैत समझेगा। गुरु तो उसको ब्रह्म ही समझेगा। लेकिन हमें अधिकार नहीं कि गुरु के साथ हम अद्वैत समझ लें। डिस्टन्स जरूरी है। तो गुरु से अद्वैत अपराध है। दूसरा, गुरु के प्रति द्वेष, इर्ष्या और स्पर्धा के कारण बार-बार किया गया गुरुद्रोह, जो यहां है; ये दूसरा गुरु अपराध है। तीसरा, गुरु में मनुष्य बुद्धि अपराध है। गुरु मनुष्य नहीं है। 'नररूप हरि' है। स्वामी रामसुखदासजी महाराज ने भी कभी कहा था कि गुरु में मनुष्यपना देखना अपराध है। ये तीसरा अपराध गुरु में नरबुद्धि, मनुष्यबुद्धि देखना। गुरु मनुष्य नहीं है निष्ठावालों के लिए। गुरु नहीं कहेगा कि तू मुझे ईश्वर समझ। लेकिन हमारे लिए वो ईश्वर है। चौथा, गुरु का दिया हुआ मंत्र छोड़ देना, गुरु अपराध है। गुरु को छोड़ दो; गुरु को बुरा

नहीं लगेगा। लेकिन गुरु का मंत्र न छोड़ना। क्योंकि मंत्र सार्वभौम है। गुरु का दिया मंत्र कभी नहीं छोड़ना। ब्रह्मलीन पूज्यपाद डोंगरे महाराज कहा करते थे कि मंत्र, मूर्ति और माला बदलना नहीं।

पांचवां अपराध, गुरुग्रंथ छोड़ना मत। एक जो कोई इष्ट ग्रंथ हमें गुरु ने दे दिया हो, उसको छोड़ना मत। हां, उसको मूल पकड़कर नये-नये फूल जरूर खिलाओ गुरुकृपा से ही। लेकिन गुरुग्रंथ को छोड़ना मत। ये गुरु अपराध है। छठ्ठा अपराध है, गुरुगादी की कामना नहीं, गुरु गोद की कामना रखना। हां, गादी में वारिस हो ये तो एक व्यवहार है। लेकिन सच्चे बुद्धपुरुष गादी समझते ही नहीं। गुरु की गोद ही समझते हैं। गुरु गादी की कामना भीतर, ये गुरु-अपराध है। सातवां अपराध, गुरु को साध्य के बदले साधन बनाना गुरु-अपराध है। कुछ भी हो जाये जीवन में हिंमत रखो लेकिन किसी साधु को साधन मत बनाना। गुरु साध्य है; गुरु साधन नहीं है। गुरु के द्वारा प्राइवेट प्रेक्टिस मत करना गुरु के नाम से! ये सातवां अपराध है। गुरु की पादुका रखी हो और उसीके ही पद का बार-बार अपमान करना, गुरु अपराध है। पादुका आप छोड़ नहीं सकते और जो पादुका जिस चरण की थी उस चरण की हर एक हरकतों का आप विरोध करो! काशीवाले चिल्लाते थे, कबीरा बिगड़ गया! ये अपराध है। गुरु पादुका अथवा तो गुरु की दी हुई चीज का अपमान करना अपराध है। पद का एक अर्थ होता है वचन। पद का एक अर्थ होता है गुरु ने कोई रचना की हो। कोई कविता, कोई गीत, कोई सुन्दर भजन, कोई शे'र, कोई शायरी। कोई भी फ़कीरों ने जो लिखी हो, वो गुरु का पद है। ये पद्य है। उसका गलत अर्थ करना, उसका विरोध करना, गुरु अपराध है।

कोई महापुरुष की रजततुला हो, स्वर्णतुला हो, हीरों की तुला हो ये आश्रितों का अपना आनंद है। अपनी श्रद्धा है, ठीक है। लेकिन गुरु को सोने और चांदी के सिक्कों से तोलना गुरु अपराध है। उसको ज्ञान-बैराग से तोलो। मेरे कहने का मतलब आप समझिएगा प्लीझ! भौतिक पदार्थों से किसी गुरुजन को तोलने की चेष्टा अपराध है। उसको ज्ञान से तोलो, उसको बैराग से तोलो। उसकी नमी आंखों से उसको तोलो। उसके अंत:करण की गहराई से तोलो। प्लीझ, उनकी फ़कीरी से उसको तोलो। मेरी समझ में ये नौवां अपराध है। दसवां और आखिरी गुरु अपराध है, गुरु को अंधेरे में रखकर उसके सामने झूठ बोलना। वो तो भद्र पुरुष होते हैं। तुम्हारी बात मान लेंगे। लेकिन हम अपराधी हो जाते हैं। सच बोलना गुरुजनों के पास।

तो भुशुंडिजी अपराध किये जा रहे हैं। हम और आप इन अपराधों से बचे। लेकिन प्लीझ, सावधानी से सुनिए। मुझे तथाकथित गुरुओं से हो रहे दस शिष्य अपराध भी कहने हैं। तराजू तो तभी ठीक होगा। हर गुरु शिष्य का अपराध नहीं करते। गुरु, गुरु होते हैं। लेकिन तथाकथित गुरु करते हैं! कलि प्रभाव है सब जगह! शिष्य अपराध न हो जाये। कभी-कभी तथाकथित गुरु होते हैं, जो गुरु नहीं है। गुरु होने की इतनी होड क्यों? इतनी स्पर्धा क्यों? मुझे तो कोई पूछते कि आपके फोलोअर्स कितने? तो मैं कहता हूं, मेरे कोई फोलोअर्स नहीं है, सब फ्लावर है। छोटे-बड़े फ्लावर है सब। दस शिष्य अपराध। एक, जो तुलसी ने भी लिखा है-

हरहिं सिस्य धन सोक न हरहिं।
सो गुरु घोर नमक माहि परहिं।।

तुलसी कहते हैं, जो शिष्य का धन हरता है, उसका जनम-जनम का शोक नहीं हरता; ऐसा तथाकथित गुरु शिष्य अपराध कर रहा हैं। तथाकथितों की बात है। मैं बिलकुल स्पष्ट करना चाहूंगा। आज अखबार में फोटो है कि साधु के वेश में कई लोग पकड़े गये जो चोरी करते थे! चार-पांच लाख रूपये निकले हैं! सावधान रहे। दूसरा अपराध; शिष्य और शिष्य परिवार का शोषण, ये शिष्य अपराध है। गुरु तो पोषक है। तीसरा, अशुद्ध मंत्रदान शिष्य का अपराध है। जिसने मंत्र सिद्ध किया हो अथवा तो गुरु की कृपा से जो देने के लिए योग्य हो ऐसे महापुरुष मंत्रदीक्षा और नामदीक्षा दे सकते हैं। साबर मंत्र; उसकी भी एक महिमा थी, खैर एक समय में। बाकी खबर नहीं, कैसे-कैसे मंत्र लोगों ने निकाले हैं! शास्त्र विरुद्ध, वेद विरुद्ध मंत्र का दान, शिष्य अपराध है। बार-बार शिष्य को प्रलोभन दिखाना और भय दिखाना शिष्य अपराध है। प्रलोभन नहीं। मोक्ष का भी प्रलोभन मत दो। उसको प्रेम करो। और 'राम भजत सोई मुक्ति गोसाई।' राम भजेगा तो मुक्ति अपने आप छाया की तरह पीछे-पीछे चली जाएगी। प्रलोभन दिखाना, ऐसा हो जाएगा, ऐसा हो जाएगा! जफ़र की गज़ल-

जो सजर सूख गया हरा हो कैसे?
मैं पयम्बर तो नहीं, मेरा कहा हो कैसे?

मैं कोई पैगम्बर तो नहीं कि वचन सिद्धि हो कि मैं बोलू और हो जाए!

जिसको देखा ही नहीं उसको खुदा क्यों मानूं?
जिसको मैंने जान लिया वो खुदा हो कैसे?

ये तो 'नेति' का प्रदेश है। कोई कहे, मैंने जान लिया तो वो खुदा नहीं हो सकता। और जिसको देखा नहीं उसको मैं खुदा मानूं!

पांचवां अपराध है, कुछ पाने के लिए शिष्य की प्रशंसा; उसकी झूठी सराहना, अरे, तू तो, तू है! सराहना न हो, प्रशंसा न हो। हमारी सरस्वती हमें श्राप देगी और आश्रित का अकल्याण होगा उसको अहंकार आने से। छठ्ठा अपराध जिसको व्यासपीठ शिष्यअपराध कहती हैं, शिष्य की पात्रता देखे बिना उसके पास शास्त्र खोलना सामनेवाले के लिए नुकसान है। खुद का तो होगा ही। हमारी गंगासती बोली है-

कुपात्रनी आगळ वस्तु न वावीए ने, समजीने रहीए चूप रे;
मरने आवीने द्रव्यनो ढगलो करे ने, भले होय मोटो भूप रे..

अपात्र के आगे शास्त्रदान, ये अपराध है। साधुपुरुष नहीं करता। सातवां अपराध, शिष्य गुरु का अपराध करे लेकिन गुरु इस अपराध का बदला लेने के लिए तैयार हो जाये तो ये शिष्य अपराध है। गुरु को अधिकार नहीं है। गुरु बदला नहीं ले सकता; गुरु बलिदान देता है। शिष्य का आठवां अपराध, शिष्य के सामने झूठे परचें दिखाना, चमत्कार दिखाना! मेरी बात नहीं मानो तो मैं चकली बना दूंगा! जो नेटवर्क बना कर कहे, और उसके शिष्य के सामने ऐसा कहे कि तीन सौ साल पहले जो अकाल पड़ा था वो मैंने देखा था! ये आठवां अपराध है परचा, चमत्कार। गलत चमत्कार और परचा दिखाकर उसका नेटवर्क बनाकर आश्रित को छलना शिष्य अपराध है। नौवां अपराध, कई तथाकथित गुरु शिष्यों को अपनी ओर से पदवियां देते हैं! 'सेवक शिरोमणि!' ये मैं जानता हूं इसलिए बोल रहा हूं। 'सेवक शिरोमणि', 'सेवक रत्न', 'सेवकश्री', ऐसी-ऐसी डिग्रियां निकाल दी! कम पैसे दें उसको 'सेवक' का बिरुद! थोड़ा ज्यादा दे तो 'सेवक श्री!' इससे थोड़ा भारी लिफ़ाफ़ा हो तो 'सेवक रत्न!' फिर इससे भी ज्यादा हो तो 'सेवक शिरोमणि!' ये शिष्य अपराध है। आखिरी और दसवां अपराध तथाकथित गुरुओं के द्वारा जो होता है वो है ब्रह्म दिखाने के बदले भ्रम में भ्रमित करना। दिखाना है ब्रह्म, निरूपण ब्रह्म का करना है और करे भ्रांतियों का निरूपण ये दसवां अपराध है।

मेरे पास आज एक गुजराती में गज़ल आई है। इसमें एक सच्चे संत के लक्षण है। गुजराती में है, मैं हिंदी करूंगा। कौन साधु? कौन सद्गुरु?

खापण सरखो खेस कबीरा।
लोग कहे दरवेश कबीरा।

खेस कितना? खापण जितना। कफ़न लेकर निकला वो फ़कीर। समाज उसको दरवेश कहते हैं। समाज उसको सच्चा संत कहते हैं। खापण सरखो खेस। कफ़न लेकर, कफ़नी लेकर जो घूमता है।

लीरेलीरा जीवतर ओढी,
छोडी चाल्यो देश कबीरा।

अहलेक करके। लीरा-लीरा, तार-तार; जीवन की दिशा बदलकर, अलख जगाकर जो निकल जाता है, वो साधु। मेरे कहने का मतलब दस गुरु अपराध, दस शिष्य अपराध। तथाकथित धर्म के द्वारा कहीं आश्रितों का अपराध न हो जाए। और हम जैसे किसी न किसी बुद्धपुरुष के चरणों में आश्रित, हमसे किसी संतपुरुष का, किसी बुद्धपुरुष का अपराध न हो जाए।

गोस्वामीजी कहते हैं, 'एक बार हर मंदिर जपत रहेउं सिव नाम।' देखो, द्वेष के कारण भुशुंडि ने मंत्र बदल दिया! मुझे शंभु का मंत्र मिला था। लेकिन गुरु ने दिया है। द्वेष और स्पर्धा ने ऐसा कर दिया कि उसने मंत्र के बदले नाम जपना शुरू कर दिया! और साहब, ये मंत्र जपता होगा भुशुंडि, तो गुरु के आने पर यदि उठे न तो अपराध नहीं होता। क्योंकि मंत्र जपते समय कुछ मर्यादा है। जप पूरे न हो तब तक उठना मना है। इसलिए मंत्र जपते समय यदि वो बैठा रहा होता तो अपराध न माना जाता। लेकिन ये तो नाम जप रहा है। उसको उठना चाहिए था। लेकिन गुरु का अपमान भगवान महाकाल सह नहीं सके! कुपित हो गया महादेव! मंदिर में नभबानी हुई; आकाशवाणी हुई। ध्यान दे, ये 'मानस' मर्मों की खान है। कान ठीक न हो तो बात और है लेकिन आकाशवाणी उसको कहते हैं कि सबको सुनाई दे। यहां 'नभवाणी' शब्द तो है। आकाशवाणी तो सार्वभौम होती है। मंदिर में आकाशवाणी हुई इसीलिए केवल भुशुंडि और उनके गुरु ने ही सुनी! कई लोग रुद्रीपाठ करते होंगे, कई लोग अभिषेक करते होंगे महाकाल के मंदिर में। लेकिन ओर किसी साधक ने नभवाणी नहीं सुनी! नभवाणी इतनी मर्यादित क्यों हो गई, मेरी समझ में नहीं आता! आकाशवाणी तो व्यापक होनी

चाहिए लेकिन आकाशवाणी ने भी सीमित रूप ले लिया। क्योंकि ये आदमी, ये भुशुंडि शंकर को केवल मंदिर में ही समझता था। बाहर तो सबका अपराध करता था। विष्णु व्यापक है। उसका अपराध। वैष्णव का अपराध। और सबका अपराध। और मेरे भाई-बहन, अपने इष्ट को केवल मंदिर में सीमित मत समझना। आज मंदिर के अंदर ही नभवाणी सुनाई दी। संकीर्णता आ गई।

भगवान कुपित हो गए महाकाल! और भगवान शंकर कुपित होकर बहुत कुछ बोले। शाप दे देते हैं! भगवान महादेव का अतिशय दारुण शाप सुनकर गुरु को हाहाकार मच गया! 'नहीं, नहीं, नहीं! ये मेरा है। उसकी भूल हो गई! मेरी कोई कमी है उसको चेताने में।' चीख उठा बुद्धपुरुष महाकाल के मंदिर में! जैसे कभी-कभी बाप कुपित हो जाए और बालक को मारने लगे तब माँ बीच में आती है कि नहीं, नहीं, नहीं, ये भूल उसकी नहीं है, मेरी है। बीच में आकर वो दंड भोग लेती है। बच्चे को बचा लेती है। गुरु के इससे ज्यादा लक्षण विश्व में कोई हो ही नहीं सकते जो 'मानस' में लिखा है। और तब जाके हाथ जोड़कर दंडवत् किया कागभुशुंडि ने। और अब तो चिड़ियां चुग गई खेत! गुरु ने देखा तो भुशुंडि कांप रहा है। आंखों से आंसू बह रहे हैं। इश्वर कोपे तो गुरु बचा लेता है। बहुत कांपने लगा। लेकिन बहुत देर हो गई, बहुत देर हो गई थी! तब जाके गुरु के मुख से 'रुद्राष्टक' का प्रागट्य हुआ।

तो 'मानस-महाकाल', जिसकी कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा चल रही है हमारी विशेष जागृति के लिए। सावधानी के लिए कुछ बातें मैंने आपके सामने रखी। डरने की कोई जरूरत नहीं। शिव कृपालु हैं तो हमारा गुरु अति कृपालु है। 'रुद्राष्टक' की महिमा अद्‌भुत है। संत-गुरु आदि के अपराधों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए 'रुद्राष्टक' पर्याप्त है। मैं एक बार फिर कहूं, 'रुद्राष्टक' सिद्ध अष्टक है; 'रुद्राष्टक' शुद्धाष्टक भी है। वो शुद्ध है। हमारे अंत:करण की शुद्धि कर देता है। ऐसा 'रुद्राष्टक' इस महाकाल के सामने गाया गया है।

आइए, अब आगे बढ़ें। कल तक हम गाते थे कि भगवान शंकर ने काम को जलाकर भस्म कर दिया और संसार में हाहाकार हो गया! यहां भगवान शिव जाग्रत बैठे हैं। स्वार्थी देवता शिव के पास आते हैं। सब देवताओं ने महादेव की प्रशंसा की। भगवान महादेव मुस्कुरा दिए। देवताओं को कहा कि ये प्रशंसा बंद करो। मैं जानता हूं कि आप देव हैं। आप ये न भूलो, मैं महादेव हूं। ब्रह्मा ने चतुराई से कहा, महाराज, ये देवता मेरे पीछे पड़े हैं कि देवलोक में, देव समाज में किसीकी शादी नहीं हो रही है! बारात में जाने का अवसर नहीं मिलता है। तो मैंने सोचा कि चलो, महादेव को मनाए और महादेव शादी करे तो हम सब बारात में जा सके। मूल बात न कही कि आप शादी करो तो आपके घर में पुत्रजन्म हो और वो पुत्र तारकासुर नामक राक्षक को मार दे। और हमारे भोग सलामत रह जाए। चतुराई में स्वार्थी बोली में बोले। तो स्वार्थी वाणी देव बोले। प्रशंसा की शिव की। शिव समझ गये कि आप मुझे कहे और मैं शादी करने के लिए तैयार हो जाऊं ऐसा मत समझना। मेरे ठाकुर ने, मेरे प्रभु ने मुझे आदेश किया है कि आप शादी करो। शिवजी ने हां बोल दी।

भगवान शंकर के निजी गण ने बाबा की जटा का मुकुट बनाया। कान में कुंडल की जगह सांप! हाथ में कंगन की जगह सांप! इवन यज्ञोपवित भी सर्प की! चिता की भस्म का लेपन किया। नंदी की सवारी। त्रिशूल-डमरु हाथ में दिया। और दुल्हेराजा बाबा भोलेनाथ तैयार हुए। पूरी दुनिया से भूत-प्रेत महादेव की शादी में आये। हिमाचल प्रदेश बारात पहुंचती है। स्वागत समिति दुल्हे का स्वागत करने के लिए आती है। भगवान शिव और उसका समाज जब आया तो सन्मान करने के लिए जो आये थे सब भागे! पार्वती की माता मैना महारानी आरती लेकर अपने दामाद का स्वागत करने आई है। महारानी मैना बेहोश हो गई और आरती गिर गई! उसी समय हिमालय, सप्तऋषि और ऋषि नारद सब गंभीर परिस्थिति समझकर रानीवास में आये। नारद समय समझकर स्वयं बोलने लगे कि महारनी मैना, तुम्हारी भूल ये है कि तू पार्वती को अपनी बेटी मानती है और तू अपने को उसकी माँ मानती है। लेकिन सुन, तू पार्वती की माँ नहीं है। पार्वती पूरे जगत की माँ है। ये तो पराम्बा तेरे घर बेटी बनकर आई है। तेरा परम भाग्य है। नारद ने जब ये बात का खुलासा किया तब सब पार्वती को प्रणाम करने लगे। शिव के प्रति सबको नया आदर प्रगट हुआ है। पूरे प्रसंग का सार इतना ही कहूं कि हमारे घर में शक्ति होती है। कोई घर खाली नहीं है जहां शक्ति न हो। अरे छोड़ो, कोई घाट खाली नहीं जहां उर्जा न हो। और हमारे द्वार पर कभी न कभी शिव आते हैं। लेकिन जब तक नारद जैसा कोई गुरु हमें बोध नहीं देता तब तक द्वार पर आया शिव हम पहचान नहीं पाते और उसका सन्मान नहीं कर पाते। और घर में ही रही बेटी को, शक्ति को हम जान नहीं पाते। इसीलिए चाहिए गुरु जो हमें शिव और शक्ति का बोध कराये।

भगवान महादेव की दुल्हे की सवारी निकली है। अष्ट सखियां पार्वती को दुल्हन के रूप में सजाकर ले आती हैं। हिमालय और मैना ने अपनी बेटी का हाथ शिव के हाथ में समर्पित किया। कन्यादान हुआ। महादेव ने पाणिग्रहण किया। पार्वती शिव की बन चुकी। बेटी की बिदाई का प्रसंग आया। हिमालय और मैना, परिवार के सदस्य उमा को बिदा दे रहे हैं। और हम सब जानते हैं कि बेटी की बिदाई माँ के लिए कितनी व्यथा देनेवाली होती है! कोई भी माँ-बाप हो। राजा हो या रंक हो। लेकिन कन्या की बिदाई बाप को व्यथित कर ही देती है। हिमालय तो अचल है। पर्वत को अचल कहते हैं। लेकिन आज हिमालय पिघल चुका है। हिमालय के नेत्र में आंसू हैं, बेटी जा रही है। पार्वती ने जब माता-पिता को प्रणाम किया तब पार्वती की माता पार्वती को कहती है बेटी, मैं ओर तो सीख क्या दूं, लेकिन सुन, बेटा, 'करेहू सदा संकर पद पूजा।' भगवान शंकर के चरणों की पूजा करियो। क्यों? 'नारिधरमु पति देउ न दूजा।' नारी के लिए यही धर्म है कि पति ही देव है। और पति यदि देव है, तो वो पत्नी में देवी का दर्शन करेगा ही। शास्त्र पति को देव कहते हैं। लेकिन वो देव नहीं तो वो पत्नी में देवी का दर्शन नहीं कर पाता। ये तो परस्पर है। 'बेटा, तुम्हारा सुहाग अखंड हो।' पालकी में पार्वती विराजित हुई। हिमालय की ये गिरिमाला, ये रास्ते के मोड। कुछ दूरी तक परिवार पीछे गया। और पार्वती की डोली दिखती बंद हो गई तब रोते हुए हिमाचलवासी लौट गए।

कन्या की विदाय स्वाभाविक है, ऐसी ही होती है। हिमालय है तो वो भी रोयेगा। मिथिलापति जनक है तो उसकी आंख में भी आंसू आएगा। और कभी कालिदास की शकुंतला के पालक पिता महर्षि कण्व हो तो वो भी रोयेगा। अथवा तो कोई भी बाप। और हम सब जानते हैं, कन्या की बिदाई होती है तो माँ को तो पीड़ा होती ही है, अवश्य होती है। लेकिन यदि तुलना की जाए तो पिता को जितनी पीड़ा होती है इतनी परिवार में औरों को नहीं होती। क्योंकि बेटी और बाप का रिश्ता भारत की भूमि पर अलौकिक है, अद्‌भुत है। बाप के मन में बेटी के प्रति जो बात होती है, ये कुछ और होती है। और बेटी के मन में बाप की जो मूर्ति होती है, ये कुछ और होती है। हम सब संसारी लोग। आप देखिये संसार में कि बेटी ससुराल जाए और ससुराल में सास, ससुर अथवा तो पति भी, सोचा हो कुछ और विपरीत निकले और बेटी पर बहुत दु:ख गिरे तो भारत की कन्या, हिमालय की बेटी अपने आपको समझकर ये सह लेती है। लेकिन बेटी को कोई ऐसी खबर दे कि बेटी, तुने सुना कि आज-कल तेरे पिता की तबियत बराबर नहीं, तेरे पिताजी बीमार है। ऐसे समय जिसके घर में बेटियां होगी उसको ही पता होता है कि पुत्री की क्या स्थिति होती है? क्योंकि बाप के प्रति उसका अद्‌भुत, एक बिलग-सा रिश्ता होता है। ऐसी बेटी जब बिदा लेती है तो किसको असर नहीं होती?

हिमाचलनगर से विदा लेकर कैलास पहुंचे। शिव और पार्वती का नित नूतन विहार गोस्वामीजी ने मर्यादा में लिखा है। दिन बीतते चले। पार्वती ने पुत्र को जन्म दिया। कार्तिकेय का जन्म हुआ। तुलसीजी आध्यात्मिक अर्थ में कार्तिकेय को पुरुषार्थ कहते हैं। पुरुषार्थ के छ: मुख है, कार्तिकेय के छ: मुख है। मेरी व्यासपीठ मुखर होती रहती है कि पुरुषार्थ भी षड्‌मुखी होता है। कार्तिकेय ने तारकासुर नामक राक्षस का निर्वाण किया और देवताओं को सुख प्राप्त हुआ। उसके बाद एक बार शिव प्रसन्नता से कैलास के वेदविदित वट की छाया में अपने हाथ से आसन बिछाकर बैठते हैं। परम पावन अवसर देखकर पार्वती आती हैं। शिव के वाम भाग में विराजित होती हैं और भगवान शिव से रामकथा की जिज्ञासा करती है कि प्रभु, मुझे रामकथा के माध्यम से रामतत्त्व समझाओ। और फिर भगवान शंकर पार्वती के सन्मुख ज्ञानपीठ पर बैठकर कथा का आरंभ करते हैं।

> गुरु के साथ अद्वैत संबंध रखना गुरु अपराध है। गुरु के साथ सदैव द्वैत होता है। गुरु के प्रति द्वेष, इर्ष्या और स्पर्धा के कारण बार-बार किया गया गुरुद्रोह, ये दूसरा गुरु अपराध है। तीसरा, गुरु में मनुष्य बुद्धि देखना अपराध है। गुरु मनुष्य नहीं है। 'नररूप हरि' है। चौथा, गुरु का दिया हुआ मंत्र छोड़ देना गुरु अपराध है। गुरु को साध्य के बदले साधन बनाना गुरु अपराध है। गुरु साध्य है; गुरु साधन नहीं है। प्राइवेट प्रेक्टिस मत करना गुरु के नाम से! गुरु पादुका अथवा तो गुरु की दी हुई चीज का अपमान करना अपराध है।

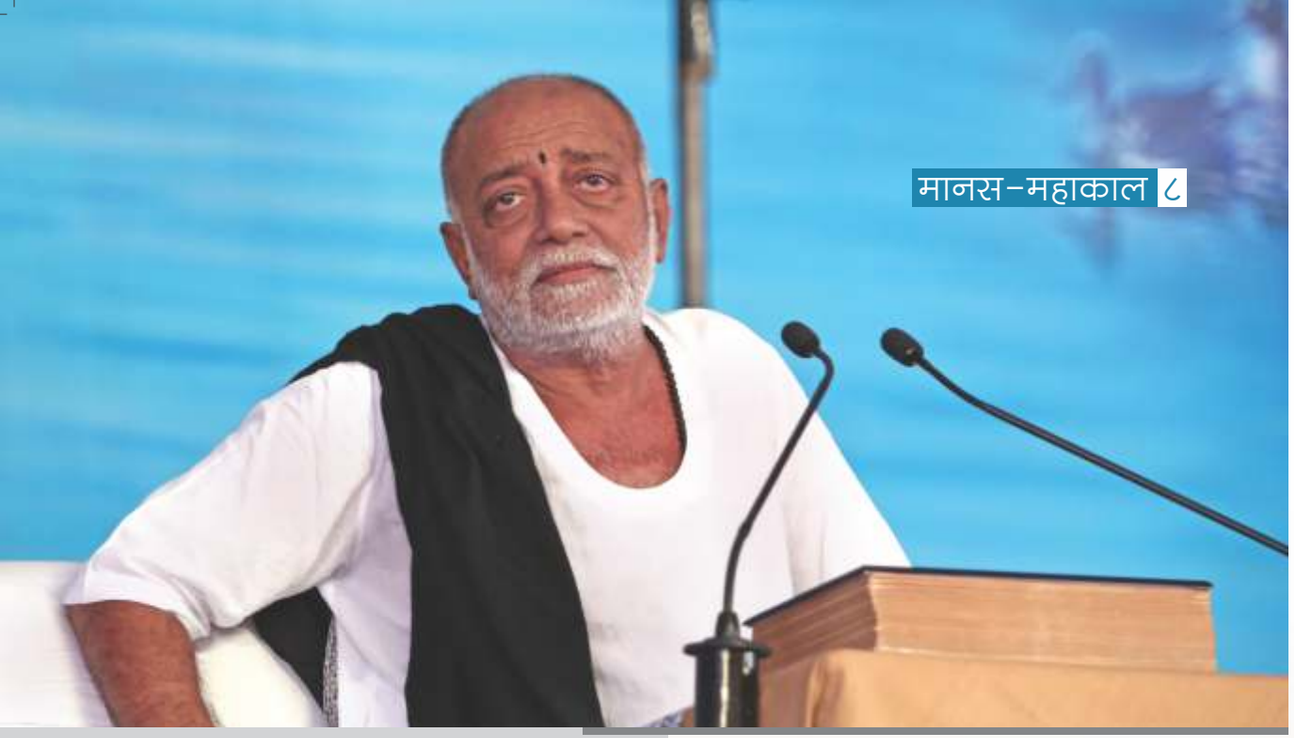

साधु वर्ण नहीं है, साधु वर्ण से बाहर है

बाप! 'मानस-महाकाल', जो इस नौ दिवसीय कथा का केन्द्रबिंदु है, जिसका हम अभिषेक कर रहे हैं या तो परिकम्मा कर रहे हैं या तो दर्शन कर रहे हैं। और ये सब करते-करते गुरुकृपा से, संतों की कृपा से, ग्रंथकृपा से कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवादी सूर में चल रही है। उसमें आगे बढ़ें।

एक बात ये आई है कि बापू, आकाशवाणी के बारे में कुछ कहे। ये विशिष्ट प्रसंग है बाप! इस प्रसंग में तीन बार आकाशवाणी हुई है। किसी एक प्रसंग में तीन बार आकाशवाणी का उच्चारण करीब-करीब दुर्लभ लगता है। 'मानस' में कई प्रसंगों में आकाशवाणी का वर्णन है। एक बार तो आकाशवाणी 'मानस' में हुई जब भगवान शिव सती को लेकर कुंभज के आश्रम कथा श्रवण हेतु गये। लौटते समय सती ने राम के चरित्र पर, राम की नरलीला पर संदेह किया। परिणामस्वरूप सती राम की परीक्षा करने तक गई और शिव के पास छिपाया! जिसमें सत् होता है उसको सती कहते हैं; धन होता है उसको धनी कहते हैं; ज्ञान होता है उसको ज्ञानी कहते हैं; योग होता है उसको योगी कहते हैं। तो 'सती' शब्द जो है उसमें सत् भरपूर है। तो सती झूठ बोली ऐसा तो मैं नहीं कहूंगा लेकिन उसने छिपाया तो जरूर। यद्यपि सती झूठ बोली ऐसी बात है तो भी सती झूठ नहीं बोली। भगवान की माया ने सती को प्रेरित करके झूठ बुलवाया। माया बडों-बडों को पकड़ लेती है। शिव ने ध्यान किया तो सती ने जो किया सो देखा। और फिर भगवान शिव सोचने लगे कि अब क्या करूं? सीता तो मेरी माँ है। सती ने सीता का रूप लिया तो अब सती से मैं गृहस्थी कैसे रखूं? और परम प्रेम त्यागा भी नहीं जा रहा था। तो भगवान पर छोड़ दिया महादेव ने। और जब शिव ने संकल्प किया तब आकाशवाणी हुई है कि महाराज, आपने ऐसा पन न किया होता तो भक्ति को इतनी मजबूत कौन करता? सराहा गया। कभी-कभी जब कोई परम सत्य की, परम संकल्प की उद्घोषणा होती है तब अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए, सराहने के लिए, इस बात को साधुवाद देने के लिए आकाशवाणी होती है।

एक बार भगवान शिव को पाने के लिए सती ने कडी तपस्या की और इस तपस्या के फलस्वरूप नभवाणी से उसको कहा गया कि तुम्हारा तप सफल हुआ है। तीसरी बार आकाशवाणी हुई है महाराज मनु और शतरूपा की तपस्या के फलस्वरूप। और ये आकाशवाणी श्रवणरंध्र से जब हृदय में आई तो शरीर हृष्टपुष्ट हो गया। चौथी बार आकाशवाणी हुई, प्रतापभानु छला गया कपटमुनि से। कपटमुनि ने आमिषयुक्त रसोई बनाई और ब्राह्मणों को भोजन के लिए प्रतापभानु ने निमंत्रित किया। और जब ब्राह्मण देवता भोजन करने लगे; उसको पता नहीं कि इसमें विविध पशुओं का मांस डाला गया

है। उसी समय ब्राह्मणों के धर्म की रक्षा के लिए आकाशवाणी होती है, बहुत हानि हो जाएगी यदि आपने ये अन्न खाया तो! वहां सावधान करने के लिए आकाशवाणी हुई।

कहीं सराहना के लिए आकाशवाणी; कहीं फलश्रुति के रूप में आकाशवाणी; कहीं तपस्या से देह को जिसने अत्यंत कृश बना दिया है, उसको पुनः धर्म साधन के लिए देह को पुष्ट करने के लिए आकाशवाणी। लेकिन ये जो प्रसंग उज्जैन में चल रहा हैं, इसमें तीन बार आकाशवाणी हुई। पहली बार जब भुशुंडि ने गुरु अपराध किया। फिर चलें महाकाल के मंदिर में जहां एक साधुचरित बुद्धपुरुष बैठा है। और भुशुंडि अपराध पर अपराध किये जा रहा है। और जब कागभुशुंडि ने अपराध किया कि गुरु आये और उठकर प्रणाम नहीं किया और उठे नहीं। अभिमान के कारण वो उठ नहीं पाए। तब महादेव सहन नहीं कर पाए और-

मंदिर माहिं भई नभबानी।
रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।

'हे हतभाग्य, हे अज्ञानी, हे मूढ़ और हे अभिमानी', ऐसा कहकर आकाशवाणी हुई। दूसरी बार आकाशवाणी होती है इस प्रसंग में, जब 'रुद्राष्टक' गाया गया। और तीसरी बार जब गुरु शिव के चरणों में प्रार्थना करता है। और इस पर वो करो तब 'एवमस्तु इति भई न भबानी।' तीन बार नभबानी, तीनों का संदर्भ भिन्न है। पहली नभवाणी कोप के कारण हुई है। दूसरी नभवाणी कृपा के कारण हुई है। तीसरी नभवाणी कृतकृत्य करने के लिए हुई है। एक ही स्थान में तीन प्रकार-क्रोध, कृपा, कृतकृत्यता। तो ये विशेष प्रसंग है। एक ही प्रसंग में तीन बार नभवाणी का उच्चारण जरा दुर्लभ-सा लगता है। लेकिन यहां हुआ है। और भगवान प्रसन्न हुए।

सुनि बिनती सर्वग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानी भई द्विजबर बर मांगु।।

एक-एक शब्द बड़े महत्त्व के हैं। प्रशांत और प्रसन्न चित्त से सुनिएगा। भगवान शिव सर्वज्ञ है। नभवाणी हुई और कहते हैं, वरदान मांगो। और अब ये बुद्धपुरुष अपने आश्रित के लिए क्या मांग रहा है? अद्भुत मांग पेश कर रहा है। हमारे यहां कहा जाता है वैसे ब्राह्मण को, द्विज को मांगने का अधिकार है। लेकिन यहां 'द्विज' शब्द नहीं है, 'द्विजवर' शब्द है। द्विज को मांगने का अधिकार है। ये भिख्खु है, मांग सकता है। साधु-संन्यासी भिख्खु हैं, मांग सकते हैं। लेकिन द्विजवर है वो मांगता नहीं। और यहां भुशुंडि के गुरु शिव जब ओफर करते हैं कि हे द्विजवर, मांगो। और ये तो केवल द्विजवर भी नहीं है। मेरी दृष्टि में इस महिमावंत बुद्धपुरुष है। क्योंकि ये द्विज तो शरीर से है, द्विजवर अपनी साधना के कारण है। और साधु-ब्राह्मण है। शास्त्रों में ऐसा आया है मेरे भाई-बहन कि साधु-ब्राह्मण के बारह लक्षण है। यद्यपि मैं तो कहता हूं कि ब्राह्मण वर्ण नहीं है, व्यवस्था है। एक व्यवस्था जरूरी है। लेकिन 'जदपि तुम्हारि साधुता देखि।' भगवान शंकर भी कहते हैं कि हे द्विजवर, तेरी साधुता देखकर मैं द्रवीभूत हूं।

तो मेरे भाई-बहन, मेरी दृष्टि में 'साधु' शब्द, जिसकी कहीं तुलना नहीं हो सकती। कोई बात ऐसी होती है तब यहां हमारे देश में साधुवाद दिया जाता है, 'साधु, साधु, साधु!' अब ये शब्द 'साधु' हमारे साथ जुड़ जाये। महात्माओं को हम साधु कहते हैं। हम गृहस्थ हैं, वैष्णव साधु हैं ये हमारा सद्भाग्य है। लेकिन ये नाम लगने से तो कोई बात नहीं बनेगी। यद्यपि आपको, जिद्द छोड़े तो कबूल करना होगा कि साधु किसी वर्ण में नहीं आता। ये ब्राह्मण भी होता है। खडग की धार पर चलता है साधु। इसलिए क्षत्रिय भी हो सकता है। साधु किसीका कर्जा नहीं रखता, देता ही रहता है; बड़ा दानी है। ये वैश्य भी है। और साधु जैसा सेवक कौन? तो साधु सब कुछ होते हुए सब से पर है। और यहां महाकाल के मंदिर में जो ब्राह्मण बैठा हुआ है वो जन्म से तो ब्राह्मण है, लेकिन ये केवल द्विज नहीं है। ये द्विजोत्तम भी है और शंकर दी दृष्टि में ये साधु है। तो साधुता का महत्त्व है बाप!

मेरे युवान भाई-बहन, हम साधु की पहचान में कहीं धोखा न खा जाए! हम कहीं छले न जाए! किसी भी साधु का परिचय करने में बारह वस्तु देखना, ऐसा शास्त्र कहता है। किसको साधु कहोगे आप? और आप ये मत समझना कि ऐसा कभी मिलेगा ही नहीं। ऐसे होते हैं। मेरा ये भुशुंडि का गुरु जो है, ऐसा है। खबर नहीं, ये बुद्धपुरुष से इतना नाता क्यों हो गया? पता नहीं, इतनी मोहब्बत, इतना लगाव इस भुशुंडि के गुरु से क्यों है? आई डोन्ट नो। लेकिन खींचा जा रहा हूं। आपकी कृपा से मुझ पर किसीका प्रभाव नहीं पड़ता। मैं किसीको फोलो नहीं करता, सिवाय मेरे गुरु। उसने दी हुई रामकथा और मेरे विष्णुदेवानंदगिरि दादा ने भेजा हुआ एक पोस्टकार्ड जिसमें कहा था कि 'गीता' का पाठ करना। मैं फोलो नहीं करता किसीको, इसका मतलब ये नहीं कि मेरा अहंकार है। ये मेरी स्वाभाविकता है। मेरे पास कोई प्रभाव डालने आये तो

शायद असफल रहेगा। मैं दिखने नहीं दूंगा लेकिन असफल रह जाएगा। और इधर-उधर के प्रभाव में प्रभावित मत हो जाना। ये दुनिया बड़ी विचित्र है। और एक कोई बुद्धपुरुष मिलने के बाद फिर किस से प्रभावित होना है? ये भटकाव ये तो हमारी चतुराई का खेल है। हम इधर-उधर क्यों भटकते हैं? हमें प्रतिष्ठा चाहिए! हम इधर-उधर परिचय क्यों प्राप्त करते हैं? जहां जाये वहां घुसकर परिचय लेना! ये क्या है? ये हमारी होशियारी है! अध्यात्म मार्ग में होशियारी नहीं चलती। जितने ज्यादा भोले होओगे इतना ज्यादा भोला प्रसन्न होगा। जितनी होशियारी की, गये! मुझे दिया गया है नवाज देवबंदीसाहब के कुछ शे'र; मैं पढ़ूं-

हवा को आजमाना था जरूरी।
चरागों को जलाना था जरूरी।
सुना है गूंगी हो जाती हैं आंखें,
इन आंखों को रुलाना था जरूरी।

तो आदमी कितनी चालाकियां करता है! कितनी चतुराई करता है! और इसमें कोई आलोचना की बात नहीं। ये बुद्धपुरुष के पास बैठा था भुशुंडि। फिर भी देखो, 'उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला।' अपने आपको कुछ का कुछ समझ रहा है! अपने आपको क्या-क्या मान बैठा है ये आदमी! हम सबकी ये दशा है! इससे बाहर आये। अध्यात्मक्षेत्र चतुराई का क्षेत्र नहीं है, भोलेपन का क्षेत्र है।

तो पहला लक्षण साधुता का। साधु वर्ण नहीं है; साधु वर्ण से बाहर है। साधु व्यवस्था नहीं है। यद्यपि उनके समान व्यवस्था और मर्यादा दुनिया में कहीं नहीं देख पाओगे। लेकिन साधु अव्यवस्था है। उसके लिए हम निर्णय नहीं कर सकते। साधु लकीर का फ़कीर नहीं होता। आप उसको अपनी दृष्टि से मढ़ना चाहोगे तो श्रमित हो जाओगे, पाओगे कुछ नहीं। कबीर को कोई एक फ्रेम में बांध पाया? गुरुनानक को कोई बांध पाया? मेडती मीरां को, इस हवा को, इस प्रेमप्रवाह को कोई शमशेर रोक पाया? चली गई द्वारिका! कोई भुजाएं रोक न पाई! जैसे मेरी व्यासपीठ कहती है, परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा है। वैसे ही साधु में भी आप देख सकते हैं। उनके इर्द-गिर्द में अस्तित्व व्यवस्था करता है। हम निर्णय नहीं कर पाते। तो बाप! जो निरंतर जप करता है और खुद को भी पता नहीं कि मेरे जप चल रहे हैं। साधुता का पहला लक्षण।

दूसरा, जो दान देता है। उसके पास विद्या है तो विद्या देगा। उसके पास कला है तो समाज को समर्पित कर देगा। उसके पास अध्ययन है तो अध्ययन प्रसाद के रूप में बांटे। उसके पास दौलत आयी तो दौलत बांट देगा। वो लुटायेगा। जो निरंतर देता है। तो दूसरा लक्षण हो जाये कि ये परिग्रही नहीं है, अपरिग्रही है। जो पंच महाव्रत महावीर स्वामी के-अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह। आया, लूटाया! अरे, खुद को लुटा देता है! ये दूसरा लक्षण साधुता का। तीसरा लक्षण, साधु वो है जो बहुत अध्ययन करता है; पंडित होने के लिए नहीं, प्रेमी होने के लिए। साधु अभ्यासु होता है। ये चहरे की किताबें पढ़ेगा। आदमी की आंखों को पढ़ेगा। आदमी के वेश को पढ़ेगा। उसकी चाल को पढ़ेगा। उसकी शरीर की चेष्टा, बोडी लेंग्वेज जिसको कहते हैं, उसको वो पढ़ेगा। कबीरसाहब कुछ नहीं पढ़े थे। कबीर ने जितनी दुनिया को पढ़ा ऐसा किसी ने नहीं पढ़ा! और उसने तो ये मोहर लगा दी कि 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।' अध्ययनशीलता पांडित्य के लिए नहीं, प्रेमी होने के लिए। मेरा अभ्यास प्रेममार्ग का हो। तो जो दान देता है वो साधुता से भरा आदमी है। कोई भी वेश में हो। बाउल हो, सूफ़ी हो, भिख्खु हो, श्रावक हो, श्राविका हो, कोई भी हो। ये तीसरा लक्षण। तीसरा लक्षण है मेरा प्रेम, मेरी भक्ति, मेरा भजन बढ़े इसीलिए वो सतत चिंतन करे, अध्ययन करे। साधुओं के संग बैठे। परिचय पाकर अपना कोई काम निकालने के लिए नहीं, अपना प्रेम बढ़ाने के लिए। ये तीसरा लक्षण।

चौथा लक्षण है, साधु वो है जो श्रम करता है। बहुत प्यारा लक्षण है। श्रम करेगा साधु। प्रमादी नहीं होगा। ये हमारे जितने साधु-संत है, आश्रम चलाते हैं। कोई गायों की सेवा करते हैं, कोई यज्ञ के लिए श्रम करते हैं। कोई शिक्षास्थान बनाते हैं। श्रम करते हैं सब। साधु श्रम करता है। कोई हेतु के बिना घूमते रहना; हेतु के बिना बोलते रहना; दूसरों की प्रसन्नता के लिए अपने को तोड़ते रहना ये श्रम नहीं है क्या? मैं यार, क्यों दौड़ता हूं? मेरा क्या लक्ष्य है? तुम्हारे चेहरे पर एक मुस्कुराहट हो जाये तो मेरा मिशन पूरा हो जाये। तुम प्रसन्न रह सको। क्या लेना-देता है मुझे? साधु तो वो है जो श्रम करता है। पांचवां लक्षण बताया है, साधुता वो है, जो तपस्वी है, तप करता है। और तप का अर्थ इतना ही नहीं कि पंच धुनी तापे। वो तो तपस्या है ही कि चारों ओर अग्नि करके कोई बैठ जाये; वो तप है। कोई सिर के बल खड़ा हो जाये, तप है। ये सब तप है। उसको प्रणाम करना चाहिए। लेकिन तुम निर्दोष हो फिर भी तुम निंदा का जहर पीते रहो ये सबसे बड़ा तप है। और यहां हम फेइल हो जाते हैं, क्योंकि उलझ जाते हैं। हमारे भावेश का, जूनागढ के शायर का एक शे'र है-

उसने कोई सफ़ाई दी ही नहीं,
आदमी बेकुसूर लगता है।

उसने आज तक कोई भी खुलासा नहीं किया, आदमी सच्चा लगता है। जो निंदा, बदनामी का जहर पीए ये साधुता है। दुनिया में कहीं भी, कभी भी जिसको जहर मिला है, ऐसे महापुरुषों को ही मिला है। जो आदमी सच्चा है फिर भी वो जहर पीए। इक्कीसवींसदी का तप तो यही है। साधुता का लक्षण है तप। छठ्ठा लक्षण है साधुता का; 'लक्षण' शब्द तो भाषा की सीमा है इसलिए स्वाभाविक बोलना पड़ता है। लेकिन यहां स्वभाव की बात है। छठ्ठा स्वभाव है, सम्यक् रूप में इन्द्रियों का संयम-नियम करता है वो साधु। इन्द्रियों को तोड़ न दे; आंख में मिर्ची न डाले। जिन्होंने डाली वो प्रणम्य है। कई ऐसे चरित्र हैं कि कुछ कुदृष्टि हो गई किसी पर तो बहुत दुःखी हो गये और आंखों में मिर्ची डाल दी। हमारे जोगीदास खुमाण की कथा है। ये प्रणम्य है। ये भी एक अद्भुत निष्ठा की बात है। कोई मुंह में शूल लगा ले कि मैं झूठ न बोल पाऊं। कान में कोई खीलें डाल दे। ये सब ठीक है। ये करना भी कोई सामान्य बात नहीं है। लेकिन एक थोड़ी हिंसा है। जो सम्यक् संयम-नियम धारण करे। आपको जितनी भूख लगे और आपको अच्छे से अच्छी वानगी जो आपको प्रिय हो वो भी आप थोड़ा कम खाए तो ये आपका संयम है। भूखे रहने की बात नहीं है। तुम खाओ। लेकिन थोड़ा कम खाओ ये संयम है। इन्द्रियों को दमन करने का मतलब सम्यक् रूप में कि भाई, हमारी इन्द्रियां किसी की निंदा सुनने के लिए चली जाती है तो जरा समझाबुझाकर कान को रोके कि ये अच्छा नहीं है।

सातवां लक्षण साधुता का है, जिसको एकांतवास प्रिय हो। जो भीड का आदमी न हो। भीड में रहता हो जरूर लेकिन अंदर से वो भीड से बिलग हो। और मुझे जगद्गुरु शंकराचार्य याद आते हैं, 'एकान्ते सुखमास्यताम्।' एकांत में रहो। मुश्किल है। लेकिन जिसको एकांत की प्रियता है। ये बड़ा प्यारा लक्षण है साधुता का। आठवां स्वभाव है साधुता का जिसको मौन पसंद है। जो मौन रहना बहुत चाहता है। बोलने पर बोलता है, साधु मौन होगा। साधु बोलेगा भी तो कृष्णमूर्ति कहते हैं, कोई पहुंचा हुआ बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति बोलता हैं तो भी समझना मत कि उसके होंठ हिल रहे हैं, उसकी जुबां बोल रही है। जो व्याकरण सहित बोल रहा है, अपनी भाषा में बोल रहा है। लेकिन बुद्धपुरुष बोलने पर भी वो नहीं बोलता है, उसका मौन बोलता है। जिसके पास जाते-जाते बोलनेवाला भी मौन होने लगे तो समझना साधुता है। मौन जिसका स्वभाव हो। मैं समाज को कहता रहता हूं कि यदि सब तरह अनुकूल हो तो सप्ताह में एक दिन मौन रखना। यदि सप्ताह में एक दिन न हो तो महिने में एक दिन मौन। महिने में न हो तो साल में कभी कोई विशेष तिथियों पर मौन। चलो, जाने दो, लेकिन मुझे कोई जब सामने से पूछे कि बापू, जनमदिन कैसे मनाया जाए? तो मैं कहता हूं कि तुम्हारे जनमदिन को ऐसे मनाओ कि तुम जितने साल के होनेवाले हो जनमदिन पर इतने घंटे का मौन रखो। कई लोग ऐसा करते हैं। मौन है साधु स्वभाव। सत्य जिसका स्वभाव हो उनको साधुता समझना। और जो व्यक्ति अहिंसक है वो स्वाभाविक साधुता है। अहिंसक; जो कभी भी वचन-मन-कर्म से किसीकी हिंसा न करे वो साधु है। जो दूसरों को पीड़े न। आत्मपीड़न भी नहीं और परआत्मपीड़न भी नहीं। इसीलिए तो नरसिंह मेहता ने गाया और गांधीबापू ने उसे वैश्विक दर्जा दे दिया-

वैष्णव जन तो तेने कहीए जे पीड पराई जाणे रे;
परदुःखे उपकार करे ने मन अभिमान न आणे रे.

और बारहवां लक्षण जो है भगवान के चरण में जिसकी प्रीत हो अखंड वो साधुता है। तो ये साधुपुरुष जो महाकाल के मंदिर बें बैठा है ये बड़ा बिलक्षण आदमी है। हे ब्राह्मण, शिव ने आकाशवाणी से पूछा, दूसरी बार आकाशवाणी, कृपा से भरी आकाशवाणी की, हे द्विजोत्तम, हे द्विजवर, हे परम साधु, मांगो मैं क्या दूं? और अब भुशुंडि के गुरु मांगते हैं कि हे प्रभु, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और आपको दीन पर दया है, नेह है तो महाराज, निजपद में मुझे प्रीति दीजिए, भक्ति दीजिए। और फिर एक दूसरा वरदान दीजिए। अब देखो, बुद्धपुरुष स्वार्थी नहीं हो सकता। और यहां बिलकुल स्वार्थी नजर आ रहा है ये आदमी! उसने पहले अपने स्वार्थ की बात मांग ली कि आपके निजपद में प्रीति प्राप्त हो और फिर दूसरा वरदान! बड़ी चालाकी कर ली! पहले ये मुझे दे दो। फिर मैं दूसरा वरदान मांगू ये भी दो। साधुपुरुष पहले अपने लिए मांग करे तो वो बुद्धता कैसी? ये साधुता कैसी? उसको तो सीधा कहना चाहिए कि मेरे शिष्य का कल्याण करो। पहले खुद के लिए मांग लिया। गर्भित गुरुमुखी अर्थ है उसका। खुद के लिए साधु ने कुछ नहीं मांगा। निजपद में भक्ति दो क्योंकि विभीषण जब राम की शरण में आया तब बोलता था, 'हर उर पद सर सरोज पद सेवक।' शंकर के हृदय में जो चरण कमल की तरह रहते हैं। 'अहो भाग्य मैं देखेउं सोई।' तो शंकर, भगवन्, महाकाल, आपके हृदय में जो चरण कंवल की तरह रहते हैं उस नारायण की भक्ति मेरे चेले को दो;

वो हरिद्रोही बन गया है। ये तेरे चरण में तो रहता है लेकिन हरिचरण चुका है। ये मेरे लिए मैं भक्ति की भीख नहीं मांगता हूं। तू हरि की भक्ति उसको दे दे। निजपद भक्ति। क्योंकि आप अपने हृदय के सरोवर में कंवल की तरह वो भगवान राम के चरण रखते हैं। विभीषण उसीकी तो कामना करके आया था कि मेरा अहोभाग्य कि मैं आज वो चरण का दर्शन कर पाऊं।

दूसरा गुरुमुखी अर्थ, महाराज, ये आपकी सेवा करता है लेकिन आपके चरणों की भक्ति अभी नहीं पाई है। सेवा तो करता है। वहां जाकर ये महाकाल की सेवा करता है। लेकिन प्रीति नहीं जागी। हे करुणा अवतार, तेरे चरण की प्रीति भी उसको दे दो। सेवा करनेवाला कभी-कभी द्वेष कर लेता है लेकिन प्रीति करनेवाला कभी किसीका द्वेष नहीं कर पाएगा। इसीलिए निजपद की भक्ति दीजिए अथवा तो उसकी दृष्टि उसके चरण पर रहे ऐसा उसको बोध दीजिए। क्योंकि वो सेवा कर रहा है, बोल-बोल कर रहा है। लेकिन आचरण क्या कर रहा है उसका उसको भान नहीं है! अपने आचरण का उसको पता नहीं। उसको ऐसी कृपा करो कि वो अपने पैरों का आचरण भी देखे कि मेरे पैर कहां-कहां जा रहे हैं? सेवा के नाम पर मेरा आचरण कितना निम्न हो चुका है? मेरा ये बुद्धपुरुष स्वार्थी नहीं है कि अपने लिए भक्ति पहले मांग ले। और फिर दूसरा बरदान दीजिए महादेव-

तव माया बस जीव जड संतत फिरहि भुलान।

मेरे शिष्य का कोई दोष नहीं है। क्या वकालत आदरी है बुद्धपुरुष ने! जानबूझकर पापात्मा नहीं होना चाहिए और दंभ करके पुण्यात्मा होने का दिखावा नहीं करना चाहिए। लेकिन किसी बुद्धपुरुष के आश्रय में चले गए और हम पापात्मा भी है तो भी कोई हमारे लिए हमारा पक्ष लेगा। गुरु भुशुंडि का पक्ष लेकर बोला कि प्रभु, आपकी माया बहुत प्रबल है। इस माया ने मेरे शिष्य को भुलावे में डाला है। और आप भी तो हनुमान के रूप में भगवान को कहते हैं कि आपकी माया के कारण मैं आपको भूल गया। तो तुम्हें भी माया लागू होती है तो ये तो बेचारा दीन है। तू भी मायाग्रस्त हो गया था! तो मेरा ये बेचारा शिष्य मायावश हो गया। उस पर क्रोध न करो। आप कृपासिन्धु हैं; आप करुणावतार हैं। हे दीन दयालु शंभु, अब मेरे शिष्य पर कृपा करो। आपके मुंह से जो निकल गया, वो मिथ्या हो जाये ऐसा तो मैं कभी नहीं कहूंगा। क्योंकि ईश्वर मुधा वचन नहीं बोलते। लेकिन एक कृपा करो, ये श्राप थोड़े काल में समाप्त हो जाए। आप इतनी कृपा करो। और फिर ये मांग की-

बिप्र गिरा सुनि परहित सानी।

एवमस्तु इति भइ नभबानी।।

कृतकृत्यता के लिए तीसरी बार नभबानी हुई। क्रोध के लिए पहली बार। कृपा के लिए दूसरी बार। कृतकृत्यता के लिए तीसरी बार नभबानी हुई। और फिर जिस साधुता का वर्णन मैं केन्द्र में लेकर आज बोल पड़ा वो पंक्ति-

जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा।

हे बुद्धपुरुष, तेरे शिष्य ने दारुण पाप किया है। मैंने भी क्रोध करके उसको श्राप दे दिया है फिर भी-

तदपि तुम्हारि साधुता देखी।

करिहउं एहि पर कृपा बिसेषी।।

तुम्हारी साधुता देखकर मैं कृपा करूंगा। देखिये, वो कृपा का अधिकारी नहीं रहा लेकिन आपकी साधुता देखकर मैं उस पर कृपा करता हूं। फिर कृतकृत्यता से भरी ये आकाशवाणी क्या मालामाल कर देती है! 'हजार जन्म उसको अवश्य लेना पड़ेगा। जनमते-मरते उसको पीड़ा नहीं होगी। जन्म-मृत्यु जरा व्याधि, ये सब पीड़ादायक है। लेकिन तुम्हारे शिष्य को जनमते पीड़ा नहीं होगी। मर जाएगा। जन्मेगा। जल्दी-जल्दी सजा कट जाएगी। किसी भी जन्म में तुम्हारे शिष्य का ज्ञान नष्ट नहीं होगा। उसको सब याद रहेगा।' फिर एक महत्त्व की बात पर शिव सावधान करते हैं, 'इंद्र के हाथ का वज्र और मेरे हाथ का त्रिशूल ये विशाल है। ये कभी विफल नहीं होता। और कालदंड, काल का दंड और भगवान विष्णु का, नारायण का चक्र ये कभी विफल नहीं होता।' तो इससे भी जो मारा नहीं मरता वो विप्रद्रोह की अग्नि में जल जाता है आदि-आदि। आखिर में वहीं रुकना चाहूंगा-

सुनि सिव बचन हरषि गुरु एवमस्तु इति भाषि।

मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि।।

शिव की बानी सुनकर 'एवमस्तु' भाखकर मुझे प्रबोध देकर गुरु घर चला गया। गरुड ने भुशुंडि को प्रश्न पूछा कि हे कृतार्थरूप प्रभु, ये तो घाटे का सौदा हो गया! गुरु चला गया! ये सब करके गुरु अपने घर चला गया। और 'मानस' का दर्शन करने से तो पता लगता है कि सही में गुरु चला गया फिर कहीं दिखता नहीं हैं। कहां गया? किसी का गुरु चला जाए ये तो बड़ी हानि है। और जैसे कोई घटना घटे, बात कोई निपटा दे और फिर वो निपटनेवाला आदमी अपने घर चला जाये। तो ये संसार की दृष्टि से ठीक है; अध्यात्म की दृष्टि से उचित है क्या? और यहां भुशुंडि का ये बुद्धपुरुष कहां गया वो पता नहीं लगता!

तो गुरु चला जाये ये तो ठीक नहीं। आनंद जब बुद्ध की अंतिम अवस्था में रोने लगा था। गंधकुटि में तथागत विराजमान हैं। आखिरी सांस की ओर गति है। जो आदमी निरंतर सालों तक बुद्धपुरुष के पास रहा है। शरीर की नश्वरता का बोध निरंतर सुनता रहा था। लेकिन तथागत जब आंखें बंद करने की क्षण में थे तब आनंद रोने लगा कि गुरु जाए वो अच्छा नहीं। बुद्ध स्वयं समझाते हैं कि ये शरीर तो एक बार जाएगा। आत्मा तो उड़ जाएगा। आखिर में बुद्ध निर्वाण को उपलब्ध होते हैं। और फिर आनंद बहुत रोता है तब सारिपुत्र, महाकाश्यप आदि उसको समझाने की चेष्टा करते हैं। आनंद नहीं मान पाया। उसने कहा, आत्मदेव भले चला गया है लेकिन मंदिर भी तो बड़ा प्यारा था। ये देह मंदिर भी तो बहुत सुंदर था। आज मंदिर गिर गया! संसार के बुद्धपुरुष हमारे जैसे जीवों के लिए शरीर में ज्यादा रहे ये विश्व के लिए आवश्यक है। यद्यपि जाने के बाद भी व्यापक बनकर ये हमारी चेतना को प्रगट करता रहेगा। फिर भी हम देहवादी लोग हैं इसलिए देह में रहे ज्यादा अच्छा लगता है। विश्व को प्रार्थना करो, अस्तित्व को प्रार्थना करो कि ऐसे बुद्धपुरुष हमारे बीच में ज्यादा समय रहे क्योंकि हम जैसे देहधारियों के लिए देहधारी ज्यादा प्रेरणा दे पायें। यदि हमारी इतनी उंचाई हो जाये कि उसकी चेतना भी हम प्रेरित कर सके तो ये बहुत बड़ी उपलब्धि है अवश्य। लेकिन हमारी उड़ान इतनी कहां है? पंगु है हम! कई प्रकार से हम विकलांग है!

तो भुशुंडि की कोई शिकायत नहीं है; कोई ग्लानि नहीं। इससे सिद्ध होता है कि भुशुंडि संतुष्ट है कि मेरा गुरु गया नहीं। और शरीर से जाए तो भी किसीका गुरु जाता नहीं; नहीं जाता। जाए तो वो गुरु नहीं। वजन उतारा जा सकता है। गुरु को उतारा नहीं जा सकता। सर पर बोझ, गुरुता को भी वजन कहते हैं। लेकिन ये एक ऐसी गुरुता है कि हमको हल्का-फुल्का रखती है। हमारा बोझ जो सत्ता न बने, ऐसी एक अध्यात्मसत्ता का नाम है गुरु। शिष्य का दिल है गुरु के लिए गुरुगृह। गुरु का गृह क्या? शिष्य का अंत:करण।

कथा का क्रम लूं। बेदबिदत वटवृक्ष के नीचे भगवान भोलेनाथ सहजासन में विराजित होते हैं। भगवान महादेव ऐसे विराजमान हैं। पार्वती अवसर देखकर आई। वामभाग में विराजित हुई। और भगवान शंकर को पार्वती जिज्ञासा करती है कि भगवन्, गत जन्म में मैं सती थी। आप मुझे ले गए कुंभजऋषि के आश्रम में कथाश्रवण हेतु। लेकिन मैंने गेरसमझ की। कथा चुक गई! रास्ते में ही रामदर्शन हुआ लेकिन मैं अवसर चुक गई! भगवान की परीक्षा करने गई। सीता का रूप लिया। विफल हुई। लौटी। मैंने छुपाया। आप ध्यान में सब जान गए। आपने मेरा त्याग किया। इतने हजार साल मैं आपके वियोग में रही। इतना होने के बाद भी अभी मन से ये बात गई नहीं कि राम ब्रह्म है कि भ्रम है? रामतत्त्व क्या है? तो महाराज, मुझे बताईए कि रामतत्त्व क्या है? और भगवान शंकर प्रसन्न होते हैं। पार्वती के सामने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए बाबा जब बोले तो पहला वाक्य यही शिव के मुख से निकला-

धन्य धन्य गिरि राजकुमारी।

तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी।।

साधुपुरुष के मुख से कभी धिक् निकलता ही नहीं, धन्य ही निकलता है। 'धन्य धन्य गिरि राजकुमारी।' आपके समान कोई उपकारी नहीं है। दो बार धन्यवाद दिया। आप निमित्त बनी हैं। कथा के आयोजन में, कथा कहलवाने में जो निमित्त बन जाए उसको 'मानस'कार ने दो बार धन्यवाद दिया है। पार्वती को धन्यवाद दिया। आपने ऐसी कथा पूछी जो सकल लोक को पावन करनेवाली गंगा के समान है। बहुत प्रकार से पार्वती के सामने रामतत्त्व समझाने का शिव ने सफल प्रयत्न किया। यद्यपि पार्वती, उसके कोई कारण नहीं है क्योंकि कार्य-कारण सिद्धांत उसको लागू नहीं पड़ता। फिर भी जन्म के कुछ कारण बतायें।

> मेरी दृष्टि में 'साधु' शब्द, जिसकी कहीं तुलना नहीं हो सकती। कोई बात ऐसी होती है तब यहां हमारे देश में साधुवाद दिया जाता है, 'साधु, साधु, साधु!' महात्माओं को हम साधु कहते हैं। हम गृहस्थ हैं, वैष्णव साधु हैं ये हमारा सद्भाग्य है। साधु किसी वर्ण में नहीं आता। ये ब्राह्मण भी होता है। खडग की धार पर चलता है साधु। इसलिए क्षत्रिय भी हो सकता है। साधु किसीका कर्जा नहीं रखता, देता ही रहता है; बड़ा दानी है। ये वैश्य भी है। और साधु जैसा सेवक कौन? तो साधु सब कुछ होते हुए सब से पर है।

वक्ता के वक्तव्य के पीछे किसी बुद्धपुरुष का मौन बोलता है

बाप! भगवान महाकाल की इस पावन नगरी में, पुण्य प्रवाह क्षिप्रा के तट पर नौ दिवसीय रामकथा का केन्द्रबिंदु 'मानस-महाकाल' रहा। हम और आप सब मिलकर संवादी सूर में कुछ गुरुकृपा से, संतों की कृपा से, ग्रंथकृपा से सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा कर रहे हैं। और मैं बहुत बार बोल चुका हूं कि वक्ता कोई भी हो, वक्ता कथा को नहीं चलाता है, कथा ही वक्ता को चलाती है। वक्ता के वक्तव्य के पीछे किसी बुद्धपुरुष का मौन बोलता है। समस्त ज्ञान का मूल स्रोत, समग्र ज्ञान का मूल केन्द्रबिंदु तो वाक्शक्ति है, ऐसा उपनिषदकार ने कहा। लेकिन ये वाक्शक्ति वक्ता की नहीं होती, उनके पीछे कोई कृपावंत बुद्धपुरुष का मौन काम करता है। शब्द की तो सीमा है। और ये 'रुद्राष्टक' जिसके अंतर्गत हमने ये दो पंक्तियां उठाई। और उस पर आपसे बातें करते-करते आठ दिन निकल गये! नौवां दिन, अभी तक रामजनम नहीं हुआ! मेरी मानसिकता ही नहीं बन रही कि महाकाल के मंदिर से मैं बाहर निकलूं! मेरी ये बाध्यता है। मैं निकल नहीं पा रहा हूं इस महाकाल के मंदिर से, जहां मुझे वो बुद्धपुरुष दिखता है। वहां कांपता हुआ उसका एक शिष्य भुशुंडि दिखता है। जहां ये 'रुद्राष्टक' में जिन-जिन लोगों ने सूर दिये हैं ये सब चेतनाएं नजर आ रही हैं।

'रामचरित मानस' के 'अयोध्याकांड' में महर्षि वाल्मीकिजी ने ऐसा एक वक्तव्य दिया है; जब रामजी ने पूछा वाल्मीकिजी को कि अब आप हमें बताईए कि हम किस स्थान निवास करें, जहां कोई मुनि हमसे उद्वेग अनुभव न करे; आदिवासी, वनवासी किसी भी प्राणी को हमारे वहां रहने से कष्ट न हो। साधना भी ठीक से चले। अवतारकार्य भी क्रम में गति करे। कोई ऐसा स्थान हमें बताइए। वाल्मीकिजी चौदह स्थान दिखाते हैं कि जिसका अंत:करण, जिसका मन, जिसका हृदय ऐसा हो वहां आप निवास करो। आध्यात्मिक स्थान निर्देश करते हैं। इसमें बारह वस्तु गिनाई है कि ये बारह जिसमें न हो उसके हृदय में आप निवास करो। मैं इस कथा में 'मानस' के उपसंहार की ओर हूं तब इतना कहते जाऊं कि ये बारह वस्तु वाल्मीकिजी ने गिनाई हैं इनमें से आठ भुशुंडि में हैं; चार नहीं हैं। और इसीलिए भुशुंडि को इन आठ दोषों से मुक्त करने के लिए बुद्धपुरुष ने अष्टक गाया। पहले ये बारह की गिनती दो पंक्तियों में-

काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।।

काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, छोभ, राग, द्रोह; नौ। दूसरी पंक्ति में-

जिन्हके कपट दंभ नहीं माया।
तिन्हके हृदय बसहु रघुराया।।

तो काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, छोभ, राग, द्रोह, कपट, दंभ, माया; बारह। ये न हो उसके हृदय में राम आप निवास करो। आप सक्रिय होओ। आप राम रूप में निवास करो। तो मेरे भुशुंडि में आठ दोष है; चार नहीं है। मुझे कहने में कोई तकलीफ़ नहीं है बाप! भुशुंडि में काम नहीं है। ये निष्काम व्यक्ति है; नि:काम है। और देहात में रहने के कारण मैं कह सकता हूं कि मयूर और कौआ दो पक्षी बहुत निष्काम माने गये हैं। मतलब कि उनका विहार किसी ने देखा नहीं। इसलिए आपत्ति नहीं होती है मुझे उसको निष्काम कहने में। भुशुंडि कौए के रूप में है, आखिर में ये कौआ बनेंगे। उसकी शूद्रत्व से ब्राह्मणत्व की ये पूरी यात्रा है। तो काम न हो वहां राम है। तो भुशुंडि में काम नहीं है। क्रोध; भुशुंडि में प्रत्यक्ष क्रोध भी नहीं दिखता। क्रोध तो उसके गुरु आगे के जन्म में महर्षि लोमस करते हैं। तो मुझे लगता है, भुशुंडि में क्रोध नहीं है। मद; मद है। 'धन मदमत्त परम बाचाला।' मद है। मान; मानी अभिमान है। 'गुरु आएउ अभिमान ते उठि नहीं कीन्ह प्रनाम।' इस आदमी में अभिमान है। काम नहीं है, क्रोध नहीं है। लेकिन मद है, मान है। और मोह से ही तो ये सब विकार प्रगट होते हैं। और जब कहा कि कौए का शरीर क्यों नहीं छोड़ते? तो बोले, कौए के शरीर पर मुझे मोह हो गया है। ये शरीर में मुझे रामभक्ति प्राप्त हुई। तो मोह है।

मुझे कहने में कोई तकलीफ़ नहीं है, भुशुंडि में लोभ नहीं है। जरा भी लोभ नहीं है। कौआ बहुत उदार होता है। चतुर माना गया कौआ लेकिन उदार है। सुना गया कि कोकिल, कोयल अपने अंडे कौए के माले में डाल देती है। और चतुर कौआ न समझे ऐसी बात नहीं कि मेरे अंडे नहीं है, कोकिल के हैं। लेकिन उदारता के कारण, निर्लोभिता के कारण ये कौआ कोयल के अंडे सेय देते हैं। ये निर्लोभ है। और राग नहीं है। भुशुंडि में रागतत्त्व नहीं है। ये चार हटा दो। बाकी के आठ भुशुंडि में हैं। इसमें द्रोह है, क्षोभ नहीं है। गुरु का दिया हुआ मंत्र छोड़ दिया, नाम जपने लगा। कोई क्षोभ नहीं हुआ इस आदमी को। गुरु आये; उठ कर प्रणाम नहीं! इसको कोई क्षोभ नहीं हुआ!

तो मेरे भाई-बहन, बाकी के आठ जो दुरित है, वो इसमें दिखते हैं। मद है, मान है, मोह है, द्रोह है, कपट है। ऐसा लगता है कि आठ दुरित के कारण आपके गुरु ने अष्टक गाया। और 'रुद्राष्टक' के समापन में नभबानी होती है। भगवान शिव महाकाल प्रसन्न हो गये। बहुत प्यारे वरदान भी दिए। और फिर शंकर भगवान के वचनों को सुनकर कागभुशुंडि के गुरु महाकाल के मंदिर में हर्षित होकर, 'तथास्तु' कहकर अपने घर की ओर चल देते हैं। गुरु का गृह है आश्रित का हृदय। वहां वो गया। लेकिन बड़ा काम ये कर गया कि भगवान शंकर को भी उन हृदय में साथ लेकर गया। गुरु तो भुशुंडि के दिल में गया लेकिन शिव के चरण को भी ले गया। और भगवान शंकर के हृदयरूपी सरोवर में कंवल की तरह जो चरण रहते हैं, तो राम भी साथ में गये। और राम गये इसलिए सब दुरित चले गये। और भुशुंडि का हृदय राम के निवास के योग्य बन गया। ऐसा उसका अर्थ हो सकता है। एक बार हृदय में गुरु बैठ जाए तो दंभ नहीं आ सकता, क्रोध नहीं आ सकता, कपट नहीं आ सकता, अभिमान नहीं आ सकता, मद नहीं आ सकता। क्योंकि गुरु बैठ गया है। वहां जगह नहीं रहती। उसके बाद भुशुंडि का जो आगे का जीवन चरित्र है वो चलता है। बहुत जन्म लेते हैं फिर आखिर में ब्राह्मण के घर में उसका जन्म होता है। मेरी समझ में शूद्रत्व से ये ब्राह्मणत्व की यात्रा है। वर्ण विषय की चर्चा नहीं है। लेकिन एक बड़ी पावन यात्रा है। और आखिर में भुशुंडि स्वयं बुद्धता प्राप्त कर लेते हैं।

तो आईये, थोड़ा गा लें फिर रामजन्म कर दें। कल कथा के क्रम में हम देख चुके एक मंज़र, एक दृश्य जहां भगवान शिव पार्वती की जिज्ञासा पर रामतत्त्व समझाने के लिए रामकथा को माध्यम के रूप में चुनते हैं। भगवान शंकर ने कहा, हे देवी, कार्य-कारण सिद्धांत वहां लागू नहीं होता फिर भी परमात्मा प्रगट हुए रामरूप में, उसके कुछ कारण है। पांच कारण 'मानस' में लिखे हैं। एक जय-विजय का कारण। जो श्राप मिला और उसके निर्वाण के लिए प्रभु आये। सती वृंदा की कथा लिख दी गई संक्षेप में। वृंदा के श्राप के लिए परमात्मा आये। फिर नारद ने भगवान को श्राप दिया। भगवान आये। मनु-शतरूपा को परमात्मा ने आशीर्वाद दिया और उसको ये फल मिला। फिर प्रतापभानु की कथा में ब्राह्मण देवताओं ने प्रतापभानु को श्राप दिया। ये पांच कारण में चार कारण में तो श्राप है! एक कारण में आशीर्वाद है। हमारी कथाओं में श्राप बहुत आता है! इक्कीसवीं सदी में परमात्मा करे, श्राप कम हो जाए। समाधान हो। श्राप नहीं, समाधान होना चाहिए, सावधानी होनी चाहिए। आखिर में ब्राह्मणों ने प्रतापभानु को श्राप दिया और प्रतापभानु दूसरे जन्म में राक्षस हुआ। उसका भाई अरिमर्दन कुंभकर्ण हुआ। धर्मरुचि नाम का एक सचिव दूसरी माता के उदर से विभीषण हुआ। मेरी

व्यासपीठ ने कई बार कहा है कि 'मानस' की कथा में राम के जन्म से पूर्व रावण के जन्म की कथा है। पहले निशिचर वंश की कथा तुलसी ने उठाई फिर सूर्यवंश की। क्योंकि सूरज निकले इससे पहले तो अंधेरा ही होता है।

रावण, कुंभकर्ण और विभीषण ने बहुत तपस्या की। बहुत दुर्गम, दुर्लभ वरदान प्राप्त किये और इसका दुरुपयोग करने लगे। पूरी धरती अकुला उठती है। और धरती गाय का रूप लेकर ऋषि-मुनियों के पास जा कर रोने लगी कि अब मुझे बचाओ। सब देवताओं के पास गए। देवताओं ने कहा कि हमारे बस की बात अब नहीं रही। सब ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्मा की अगवानी में सब ने मिलकर पुकार किया। सबने प्रार्थना की। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो। वैसे कोई कारण नहीं लेकिन कुछ कारण भी हैं। चलो, मैं अंशों के साथ प्रगट हो जाउंगा।' पूरे प्रसंग का जीवनोपयोगी सार इतना ही प्राप्त होता है कि देवताओं ने बहुत पुरुषार्थ कर लिया लेकिन रावण की समस्या से उसको निवृत्ति नहीं मिली। पुरुषार्थ जरूर किया लेकिन सफल नहीं हुए। फिर सब ने मिलकर पुकार किया, प्रार्थना की। फिर जाकर सब ने प्रतीक्षा की। और पुरुषार्थ, पुकार और प्रतीक्षा तीनों जब मिले उसके बाद प्रागट्य हुआ। हम सब के लिए प्रेरणा है। हमें पुरुषार्थ पहले करना चाहिए। लेकिन हम जीव है; हमारे पुरुषार्थ की भी सीमा है। हम प्रामाणिक पुरुषार्थ करें। दंभमुक्त प्रार्थना करें। और दिल से प्रतीक्षा करें। ये तीनों जब मिल जाते हैं तब हमारे हृदय की अयोध्या में परमात्मा विराम के रूप में, विश्राम के रूप में, आराम के रूप में, अभिराम के रूप में, लोकाभिराम के रूप में प्रगट होते हैं।

गोस्वामीजी हमें लिए चलते हैं श्रीधाम अयोध्याजी, जहां प्रभु का प्रागट्य होनेवाला है। अवधपुरी, रघुकुल में मणि ऐसे दशरथजी का वर्तमान राजपद है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग तीनों का समाहित विग्रह है महपति दशरथ। कौशल्यादि प्रिय रानियां है। सब पवित्र आचरण में डूबे रहते हैं। पति अपनी रानियों को प्रेम देता है। रानियां महाराज दशरथजी को आदर देती हैं। और ये दंपती मिलकर अपने घर में हरिभजन करते हैं। दाम्पत्य की एक बहुत बड़ी प्यारी फोर्म्यूला तुलसीदासजी देते हैं। यदि ऐसा दाम्पत्य हमारा हो जाये तो हमारे गृहस्थ जीवन में भी राम प्रगट हो सकते हैं। तीन ही बात। पत्नी अपने पति को आदर दे, क्योंकि पुरुष में अहम् की मात्रा ज्यादा होती है। उसको आदर चाहिए, सन्मान चाहिए। और पत्नी को प्रेम चाहिए। पुरुष पत्नी को प्यार दे। पत्नी अपने पति को आदर दे। और दोनों अपने घर में जो अपने इष्ट हो उसका भजन करे। बस दाम्पत्य धन्य हो जाए। ये छोटी-सी फोर्म्यूला जो गोस्वामीजी ने दी प्रसन्न दाम्पत्य की जिसमें राम की अनुभूति हो, राम प्रगटे। 'मानस' की इस फोर्म्यूला को युवक लोग ग्रहण करे तो राम प्रगटेगा, विश्राम मिलेगा जीवन में।

महाराज के जीवन में एक पीड़ा है, ग्लानि है कि मुझे पुत्र नहीं। अब जनता को कोई मुश्किल हो तो राजा के पास अपनी समस्या व्यक्त करे। लेकिन राजा को ही समस्या है तो किसको कहे? तब भारत के मनीषियों ने मार्ग दिखाया कि जब कहीं से भी समाधान प्राप्त न हो तब जाईए अपने गुरु के द्वार। वहां समाधान प्राप्त होगा। बहुत बड़ा मार्गदर्शन मिलेगा। और आज राजद्वार गुरुद्वार की ओर कदम रख रहे हैं। गुरुगृह दशरथजी गए। अपने सुख-दुःख गुरु के सामने पेश किये। मुस्कुराते हुए भगवान वशिष्टजी ने कहा, राजन्, मैं तो कभी से प्रतीक्षारत था लेकिन आपने जिज्ञासा ही नहीं की! एक नहीं चार पुत्रों के पिता हो जाओगे। पुत्र कामेष्टि यज्ञ करवाना होगा। शृंगी ने पुत्रकामेष्टि यज्ञ करवाया। भक्ति सहित आहुतियां दी गई। आखिरी आहुति में अग्निदेव प्रसाद का चरु, खीर लेकर यज्ञ कुंड से बाहर आये। वशिष्ठजी को दिया गया। कहा कि राजा को कहिए अपनी रानियों को जथा जोग बांट दे। राजा ने प्रिय रानियों को बुलाई और आधी खीर श्री कौशल्याजी को दी। आधी खीर जो थी उसमें से एक चौथाई कैकेयीजी को दिया। एक चौथाई जो बचा उसके दो भाग करके कैकेयी और कौशल्या के हाथों से प्रसन्नता से सुमित्रा को दिलवाया।

कुछ काल बीता। प्रभु को प्रगट होने का अवसर निकट आया। पंचांग अनुकूल हुआ-योग, लगन, ग्रह, बार, तिथि। प्रभु के आने की बेला है। पूरा अस्तित्व प्रसन्न है। और गोस्वामीजी हमें लिए चलते हैं उस क्षण की ओर जब परमात्मा, ईश्वर, भगवान, ब्रह्म जो कहो, कौशल्या के प्रासाद में प्रगट होनेवाला है। त्रेतायुग, चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, मध्याह्न का भास्कर, अभिजित। मंद सुगंध शीतल वायु बह रही है। मणियों की खदानें निकलने लगी पहाड़ों में। सरजू में अमृत बहने लगा। तमाम देवता आकाश में आ गये। पुष्पवृष्टि होने लगी। उसी समय पूरे जगत में जिसका निवास है अथवा तो पूरे जगत का जिसमें निवास है ऐसे परमात्मा, ऐसे ब्रह्म, ऐसे ईश्वर, ऐसे प्रभु, ऐसे भगवान माँ कौशल्या के प्रासाद में प्रगट हुए और गोस्वामीजी की लेखनी गा उठी-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

साक्षात् परमात्मा प्रगटे। प्रकाश से पूरा प्रासाद भर गया! माँ को ज्ञान हुआ। प्रभु ने मुस्कुरा दिया। संतों से मैंने सुना कि स्तुति करते-करते माँ मुंह फेर लेती हैं। कौशल्याजी ने कहा, आप आये स्वागत। आपने हमको वचन दिया था कि मैं आपके घर नररूप में प्रगट होउंगा। आप नररूप में नहीं आये, नारायण रूप में आये हैं। मुझे मानव के रूप में हरि चाहिए। भगवान ने दो हाथ बना लिए। माँ बोली, हां, अब मनुष्य लगते हो। लेकिन आपने वचन दिया था पुत्र बनकर आउंगा, आप बाप बनकर खड़े हो! परमात्मा छोटे होते-होते नवजात शिशु की तरह हो गए। माँ से पूछा गया कि अब? बोले, हां, अब बिलकुल जन्म लेनेवाले बालक की तरह आप दिखते हो लेकिन बोलते हो बडों की तरह! बालक तो रोएगा, आप रोओ। भगवान बालक के रूप में माँ के अंक में आ गए, रोने लगे। बालक के रुदन की आवाज सुनते ही ओर रानियां भ्रम के साथ दौड़कर आई! आया ब्रह्म, हुआ भ्रम! अब कौन निर्णय करे कि ये 'ब्रह्म' है कि 'भ्रम है'? उसके निर्णय के लिए तो गुरु चाहिए।

महाराज दशरथजी को समाचार दिया गया, महारानी कौशल्या के घर लाला भयो हैं। महाराज को जब खबर मिली, पुत्र जन्म हुआ, पहला अनुभव दशरथजी का ब्रह्मानंद हुआ। जल्दी वशिष्ठजी को बुलाओ, निर्णय करवाओ कि ये क्या है? गुरु ने पर्दा खोल दिया कि आपके घर परमात्मा स्वयं पधारे हैं। और दशरथजी परमानंद में डूब गए! सबको आदेश देने लगे, बाजे बजाओ, उत्सव मनाओ। और पूरी अयोध्या में नहीं, पूरे जगत में उत्सव शुरू हुआ। सिंहस्थ के परम पावन पर्व पर, क्षिप्रा के तट पर, महाकाल की नगरी में, इस नौ दिवसीय रामकथा में हुए रामजन्म की आप सभी को बधाई हो, बधाई हो!

बहुत बड़ा उत्सव हो रहा है। अयोध्या आनंद में डूबी है। प्रभु का प्रागट्य हुआ। रात मानों होती ही नहीं! हरि प्रगट हो जाए तो मोहनिशा हो ही नहीं सकती। उजाला ही उजाला हो सकता है। चारो कुंअर बड़े होने लगे। नामकरण का अवसर आया। चारों भाईयों का नामकरण हुआ। जिसका नाम लेने से आराम, विश्राम और विराम प्राप्त होगा वो कौशल्या नंदन का नाम राम रखा। राम के समान शक्लोसूरत, स्वभाव, वर्ण सबकुछ कैकेई के पुत्र का नाम जो दुनिया को भर देगा, पोषण करेगा उसका नाम भरत रखा। जिसके नाम से शत्रुबुद्धि का नाश होगा, शत्रुता मिट जाएगी, दुश्मनी खतम हो जाएगी, वैर समाप्त हो जाएगा, इस बालक का नाम शत्रुघ्न रखा। और जो सबका आधार है, लक्षणों के धाम हैं, राम के प्रिय हैं, शेषावतार हैं उसका नाम लक्ष्मण रखा।

राम महामंत्र है। रामनाम महामंत्र है। और रामनाम जपनेवालों को उसके बाद जो तीन नाम की बात यहां आई उसके अर्थ समझ लें। रामनाम यदि जपते हो मंत्र की मानसिकता से या नाम की मानसिकता से तो भरत बनकर जपना। भरत बनकर जपना मीन्स रामनाम जपनेवाला दूसरों का पोषक बने, शोषक न बने। रामनाम

जपनेवालों के साथ दुनिया दुश्मनी कर सकती है, लेकिन रामनाम जपनेवाले को चाहिए उसके मन में किसी के प्रति शत्रुता प्रगट न हो। और रामनाम जपनेवालों को चाहिए कि हमारी कक्षा के अनुसार हम दूसरों के आधार बनें। बड़ी अस्पताल हम न बना पायें लेकिन किसी मरीज़ की दवाईयां दिलवा सकते हैं। हम बड़े अन्नक्षेत्र न खोल पायें लेकिन किसी विधवा माताजी को, कोई अनाथ बालक के लिए थोड़े भोजन की व्यवस्था कर सकते हैं। हम बड़े-बड़े विद्यालय का सृजन न कर सके लेकिन कोई तेजस्वी छात्र की फीस भर के उसके उच्च अभ्यास के लिए प्रेषित कर सकते हैं।

चारों भाई औपनिषदीय विद्या पढ़कर आये। जो औपनिषदीय घोषणा है उसको राम अपने जीवन में उतार रहे हैं। समय बीतने लगा। अब मैं 'उत्तरकांड' में कागभुशुंडि ने जिस रूप में गरुड के सामने रामकथा कही है उसका आश्रय करूंगा। भुशुंडि ने भगवान के बालचरित्र की कथा गाई गरुड से आनंद के साथ। और विश्वामित्र आये, ले गए। ताडका को निर्वाण। मारीच को अपनी नरलीला में सहयोगी के लिए भेज दिया। सुबाहु को अग्नि के बाण से निर्वाण दिया। ऋषि का यज्ञ पूरा हुआ। ऋषि के कहने पर जनक के धनुषयज्ञ में जाने के लिए निकले। रास्ते में अहल्या का उद्धार किया। जनकपुर पहुंचे। नगरदर्शन का प्रसंग। पुष्पवाटिका का प्रसंग। धनुषभंग का प्रसंग। कोई धनुष नहीं तोड़ पाया और भगवान ने 'गज पंकज नाल' की तरह धनुष को तोड़ा। धनुषभंग होता है। सियाजू जयमाला पहनाती है। परशुरामजी आते हैं। अवकाश प्राप्त कर लेते हैं।

दूतों को पत्रिका लेकर अयोध्या भेज दिए गए। बारात लेकर दशरथजी आये और मागशीर्ष शुक्ल पंचमी, विवाह पंचमी, विवाह की तिथि निश्चित की। गोरज बेला, राम-जानकी, भरत-मांडवी, शत्रुघ्न-श्रुतकीर्ति, लक्ष्मण-उर्मिला, चारों का लोकरीति और वेदविधि से विवाह संपन्न होता है। महाराज जनक अपनी चारों कन्याओं को बिदा देते हैं। भगवान ब्याह कर लौट आये। अयोध्या की समृद्धि बढ़ने लगी जब से जानकी आई। दिन बीतने लगे। विश्वामित्र महाराज बिदा हो गए। 'बालकांड' पूरा हो गया।

'अयोध्याकांड' के आरंभ मे राज्याभिषेक की बात आई। विघ्न हुआ। राम का वनवास हुआ। भगवान चित्रकूट में निवास करने लगे। रामविरह में दशरथजी ने प्राणत्याग किया। और भरतजी आये, क्रिया हुई। पूरी अयोध्या को लेकर चित्रकूट गए। पादुका लेकर भरतजी लौटे। और भरत की तपस्या, भरत का प्रेम। वहां 'अयोध्याकांड' पूरा करते हैं। भगवान आगे बढ़ते हैं। अत्रि के आश्रम में गए चित्रकूट से। फिर वहीं से शरभंग, सुतीक्ष्ण, कुंभज ऋषि इन सभी महात्माओं को मिलते हुए राम, लखन, जानकी, गीधराज जटायु से मैत्री करके गोदावरी के तट पर निवास करने लगे। एक बार लक्ष्मणजी ने पांच प्रश्न पंचवटी में पूछे। प्रभु ने पांच प्रश्नों का उत्तर दिया। और यहां शूर्पणखा आ गई, दंड़ित हुई। खर-दूषण को उकसाया। रावण को उकसाया। मारीच को लेकर योजना बनाकरके रावण आया। इससे पहले प्रभु ने ललित नरलीला की योजना बना ली थी। जानकीजी अग्नि में समा गई, प्रतिबिंबित रूप रखा। यहां मारीच आया। रावण सीता का अपहरण करता है। जटायु ने शहीदी प्राप्त की। अशोकवन में रावण जतन करके सीता को बंदी बनाता है। मृग को निर्वाण देकर प्रभु लौटे। जानकीविहीन कुटिया देखकर, प्राकृत मानव की तरह प्रभु रोने लगे। आगे आए, जटायु मिले। जटायु का पितृ के समान अग्निसंस्कार किया। वहीं से प्रभु आगे बढ़े जानकी की खोज करते हुए। कबंध नामक राक्षस मिला। उसको मुक्ति देकर भगवान शबरी के आश्रम में पधारे। नौ प्रकार की भक्ति की चर्चा आई। वहीं से पंपासरोवर गए। नारदजी मिले। संत लक्षणों की चर्चा हुई। 'अरण्यकांड' पूरा हुआ।

'किष्किन्धा' के आरंभ में हनुमानजी और राम की भेंट होती है। सुग्रीव जैसे विषयी जीव का प्रभु से मिलन करवा दिया हनुमानजी ने। दोस्ती हुई। बालि प्राणभंग हुआ। 'किष्किन्धा' का राज सुग्रीव को, अंगद को युवराजपद। प्रभु ने प्रवर्षण पर चातुर्मास किया। जानकी की खोज की योजना बनी। सब दिशाओं में बंदर-भालू भेज दिए गए। दक्षिण की टुकड़ी का नायक अंगद है, जिसमें जामवंत सलाहकार है। ये सब दक्षिण की ओर जानकी की खोज के लिए निकले। सब से अंत में हनुमानजी प्रणाम करते हैं। प्रभु मुद्रिका देते हैं। और सीतान्वेषण शुरू होता है। समुद्र के तट पर पहुंचे। संपाति ने मार्गदर्शन दिया। कहा कि सीता अशोक वृक्ष के नीचे लंका में है। जाये कौन? सब ने बल की उद्घोषणा की। श्री हनुमानजी चुप हैं। जामवंतजी ने आह्वान किया कि आप चुप क्यों हैं? राम के कार्य के लिए आपका अवतार है। सुनते ही पर्वताकार हुए हैं। हनुमानजी जामवंत की सलाह लेकर रामकार्य के लिए कार्यरत होते हैं।

'सुन्दरकांड' के आरंभ में हनुमानजी प्रसन्नतापूर्वक रामकार्य के लिए छलांग भरते हैं। बीच के विघ्न को पार करते हैं। लंकाप्रवेश। हर एक मंदिर में भोग में डूबे लोग पाए। एक भवन देखा, हरिमंदिर भिन्न देखा। वहां कुछ बिलग-सा अनुभव हुआ। और उसी समय विभीषण जागता है। हनुमानजी और विभीषण की भेंट होती है। भक्ति की जुगति कहते हैं उसको। हनुमानजी जानकी के पास पहुंचते हैं। उसी समय रावण आता है। धमकाता है। गया। हनुमानजी तरु-पल्लव में सोच रहे हैं कि क्या करूं? जब जानकीजी दुःख प्रगट करती है तब हनुमानजी ने मुद्रिका डाली। जानकीजी ने मुद्रिका को हाथ में उठाया चकित चित्त से! हनुमानजी प्रगट होते हैं। बहुत राजी हुई माँ। आशीर्वाद दिया। हनुमानजी को भूख लगी। मधुर फल खाने को कहा। फल खाए, तरु तोड़े। राक्षस आये। कोई मरे, कोई ये हुआ। इन्द्रजित बांध करके लंका के दरबार में ले गया। रावण मृत्युदंड घोषित करता हैं। विभीषण कहता हैं कि नीति मना करती है, दूत को मृत्युदंड न दिया जाए। ओर सजा दी जा सकती है। विभीषण की बात को कुबूल की और हनुमानजी की पूंछ जलाई। इसका इतना ही अर्थ कि जो भक्ति का दर्शन कर लेता है, राम को पाकर रामकार्य करता है, ऐसे आदमी को समाज जलाने की चेष्टा करता ही करता है। लेकिन हनुमानजी की तरह पक्का होगा तो खुद नहीं जलेगा, समाज की मान्यताओं, समाज की भ्रमणाओं को जलाकर भस्म कर देगा। एक विभीषण का घर न जला; हनुमानजी को कुछ नहीं हुआ। पूरी लंका जल गई! हनुमानजी समुद्र में स्नान करके माँ के पास आये। चूडामणि लिया। ये ढाढस देकर राम के पास। जामवंत ने हनुमंतचरित्र रामजी को सुनाया। प्रभु ने कहा, कपि तेरे ऋण से हम कभी मुक्त नहीं हो पायेंगे। भगवान ने कहा, विलंब न करे। यात्रा शुरू हुई। समुद्र के तट पर सब आये।

यहां रावण को खबर मिली गुप्तचर विभाग के द्वारा। आपातकालीन बैठक हुई। विभीषण ने बहुत सही बात कही। रावण ने अपमान किया, चरणप्रहार किया। विभीषण राम की शरण में आ गया। और यहां निर्णय लिया गया प्रभु तीन दिन समुद्र के तट पर अनशन करे, व्रत धारण करे। समुद्र मारग दे तो बल का उपयोग न किया जाये। तीन दिन प्रभु बैठते हैं। समुद्र ने कोई जवाब नहीं दिया तब प्रभु ने थोड़ा भय दिखाया। फिर ब्राह्मण का रूप लेकर, मणियों का थाल लेकर समुद्र राम की शरण में आया। सेतुबंध का विचार दिया। प्रभु ने स्वीकारा कि मेरा कार्य ही तो सेतुबंध का है। 'सुन्दरकांड' समापन हुआ।

'लंकाकांड' के आरंभ में सेतुबंध हुआ। भगवान रामेश्वर की स्थापना हुई। कई विचारधाराओं के बीच में प्रभु ने सेतुबंध बना दिया। और भगवान सेतुबंध से पार हो कर लंका। सुमेर पर प्रभु का डेरा। रावण का रसभंग। दूसरे दिन संधि प्रस्ताव लेकर अंगद का जाना। मंत्रणा असफल। युद्ध अनिवार्य। घमासान युद्ध होता हैं। एक के बाद एक सब निर्वाण को प्राप्त होते हैं। आखिर में इकतीस बाण से प्रभु ने रावण को निर्वाण पद दिया है। उसका तेज प्रभु के चेहरे में समा गया। मंदोदरी ने प्रभु की स्तुति की। रावण का संस्कार हुआ। विभीषण का राजतिलक हुआ। सीता और रघुनाथजी का पुनः मिलन हुआ। पुष्पकारूढ़ राम अयोध्या के लिए निकल पड़े। सेतुबंध रामेश्वर का दर्शन जानकी को करवाया। हनुमानजी को अयोध्या भेज दिए गए। शृंगबेरपुर प्रभु का विमान उतरा। जिस केवट ने, निषाद ने भगवान के पैर धो कर नौका में बिठाकर उतारा था, प्रभु उसके पास जाकर कहते हैं भैया, तेरी उतराई बाकी है। क्या दूं? रो पड़ा केवट! कहे, महाराज ये तो होशियारी की थी दुबारा दर्शन करने के लिए! आपने मुझे क्या नहीं दिया! प्रभु ने दबाव डाला तब कहा कि प्रभु, मैंने आपको नौका में बिठाया था। आप मुझे विमान में बिठाकर अवध ले चलो।

'उत्तरकांड' के आरंभ में अयोध्या की अति विषम स्थिति है। एक दिन बाकी है। और जैसे डूबते आदमी को कोई जहाज मिल जाए ऐसे श्री हनुमानजी नंदिग्राम में आ गए। बोले, महाराज, भगवान राघव, जानकीजी, भैया

> मैं बहुत बार बोल चुका हूं कि वक्ता कोई भी हो, वक्ता कथा को नहीं चलाता है, कथा ही वक्ता को चलाती है। वक्ता के वक्तव्य के पीछे किसी बुद्धपुरुष का मौन बोलता है। समस्त ज्ञान का मूल स्रोत, समग्र ज्ञान का मूल केन्द्रबिंदु तो वाक्शक्ति है, ऐसा उपनिषदकार ने कहा। लेकिन ये वाक्शक्ति वक्ता की नहीं होती, उनके पीछे कोई कृपावंत बुद्धपुरुष का मौन काम करता है। शब्द की तो सीमा है।

लखन सकुशल लौट रहे हैं। 'रामजी आ रहे है!' सुनते ही भरत की आंखें डबडबा गई! विमान अयोध्या को चक्कर लगाकर सरजू तट पर उतरा है। भगवान विमान से नीचे उतरे। विमान में भगवान के साथ वानर है, रींछ है, असुर भी है। लेकिन तुलसी कहते हैं, विमान से जब उतरे तब सबने मनुष्य शरीर धारण किया। ये चमत्कार नहीं है। ये मानव बनाने की पूरी प्रक्रिया थी। भगवान जन्मभूमि की मिट्टी को सर पर रखते हुए दौड़े। भरत और राम जब मिलते हैं, कोई निर्णय नहीं कर पाया कि वनवासी कौन था? गुरुदेव को प्रणाम किया। वशिष्ठजी ने आशीर्वाद दिया। प्रभु ने अमित रूप धारण किया। सबको व्यक्तिगत साक्षात्कार हुआ। सब धन्य हुए। सबसे पहले ठाकुर कैकेई माँ के भवन गए। माँ का संकोच निवारा। सुमित्रा को प्रणाम किया। और कौशल्या के पास आये। सब रो पड़े। वशिष्ठजी आये। ब्राह्मणों को पूछा कि आज ही तिलक कर दें? ब्राह्मणों ने कहा, महाराज, अब विलंब न करे। चारों भाइयों का स्नान हुआ। चौदह साल पहले जो वस्त्रालंकार धारण करना था वे धारण किये गए। दिव्य सिंहासन मांगा। राम सत्ता के पास नहीं गए, सत्ता सत् की शरण में आई। पृथ्वी को, सूर्य को, दिशाओं को, माताओं को, ब्राह्मण देवताओं को, गुरुदेव को, जनता को प्रणाम करके राघव जानकीसह रामराज्य के सिंहासन पर विराजित हुए। और विश्व को रामराज्य देते हुए वशिष्ठजी मेरे प्रभु के भाल में तिलक कर रहे हैं। तुलसी गा उठे-

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

त्रिभुवन को रामराज्य का राजतिलक हुआ। जयजयकार हुआ। अपने पुत्रों को देखकर माताएं हर्षित हुई और आरती उतारने लगी। वेदों ने स्तुति की। और देवता लोग तो आकाश में हवाई निरीक्षण करके चले गए! क्योंकि इनको रामराज्य में रुचि नहीं थी! रामराज्य में तो रुचि शंकर की थी इसलिए महादेव कैलास से स्वयं राजा दरबार में पधारे। रामराज्य के दरबार में स्तुति करते हैं। शिवजी कैलास गए। रामराज्य की स्थापना हुई। छः मास बीत गए। सबको प्रभु ने बिदा दी। एक हनुमानजी पुन्यपुंज हैं। हनुमानजी कायम अयोध्या में रहे।

समयमर्यादा पूरी हुई। नरलीला है ठाकुर की। जानकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। ऐसे ही तीनों भाईयों के वहां भी दो-दो पुत्र जन्मे। रघुवंश के वारिस के नाम बताकर तुलसी ने रामकथा पूरी कर दी। जानकी का दूसरी बार का त्याग, जिसमें अपवाद, दुर्वाद, विवाद है ये कोई बात तुलसी ने उठाई नहीं। तुलसी चाहते हैं कि लोक सिंहासन पर बैठे सीता-राम बस ऐसे ही रहे। उनको कोई बिलग न करे। इसलिए संवाद के शास्त्र में तुलसी ने रामराज्य तक की कथा की। उसके बाद जो कथा है वो कागभुशुंडिजी का जीवनचरित्र है। गरुड आते हैं; उसकी जिज्ञासा पर अपना जीवनचरित्र भुशुंडिजी गाते हैं। उसीमें ही ये प्रसंग आया था। ये उज्जैनवाला प्रसंग कागभुशुंडि ने गरुड को सुनाया। और ये पूरी बुद्धपुरुष की कथा सुना दी इसी में 'रुद्राष्टक' की कथा आई। सात प्रश्न पूछे हैं गरुड ने। भुशुंडि ने सातों प्रश्नों के उत्तर दिए हैं। गरुड को पूछा भुशुंडि ने अब कुछ सुनना है? बोले, नहीं, महाराज, मैं धन्य हो गया। मैं कृतकृत्य हो गया।

बाबा भुशुंडि ने नीलगिरि के शिखर पर कथा को विराम दिया। यहां याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी को कथा को विराम दिया कि नहीं वो स्पष्ट नहीं है। भगवान महादेव, ज्ञानपीठ के आचार्य पार्वती को कहते हैं, देवी, अब आपको कुछ सुनना है? पार्वती शिवजी को कहती हैं, हे प्रभु, मैं कृतकृत्य हो गई। शिव ने कथा को विराम दिया। कलिपावनावतार पूज्यपाद तुलसीदासजी अपने मन को कथा सुनाते हुए हम सबको आखरी संदेश देते हैं, ये कलियुग में हम जैसों के लिए कोई ओर साधन नहीं है। तीन ही वस्तु है-'रामहि सुमिरिअ', राम को स्मरो। 'गाइअ रामहिं', राम को गाओ। 'संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।' राम को सुनो। 'रामहि सुमिरि', ये सत्य है। क्योंकि राम स्मरण ही सत्य है। 'गाइअ रामहिं', राम को गाओ। ये प्रेम है। जो प्रेम करेगा, गाये बिना नहीं रह सकता। मीरां ने प्रेम किया, गाया। कबीर ने गाया काशी की भर बाजार में। नारद ने गाया। जिसने प्रेम किया वो गाते हैं। जो प्रेम करता है, भक्ति करता है, गाये बिना नहीं रह सकता। तो यही है सत्य, प्रेम, करुणा। जो मेरी दृष्टि में 'रामचरित मानस' का निचोड है; पूरे शास्त्र का सार है। मुझे लगता है, भगवान की ही केवल कृपा से ये नौदिवसीय प्रेमयज्ञ पूरा होने जा रहा है। और नौदिवसीय रामकथा यानी प्रेमयज्ञ का जो सुकृत है, हम सब मिलकर साधु-संतों की उपस्थिति में भगवान महाकाल के चरणों मे समर्पित करें कि हे महादेव, हमारी वाङ्मयी पूजा, ये हमारी श्रवणपूजा को हम आपके चरणों में समर्पित करते हैं।

मानस-मुशायरा

मैं क्षिप्रा-सा सरल तरल बहता हूं।
मैं कालिदास की शेष कथा कहता हूं।
मुझको तो मौत डरा नहीं सकती,
मैं महाकाल की नगरी में रहता हूं।।

– शिवमंगलसिंह 'सुमन'

खुलूसे महोब्बत की खुश्बू से तर है।
चले आईये ये अजीबों का घर है।
अलग ही मज़ा है फ़कीरी का अपना,
न पाने की चिंता, न खोने का डर है।

– दीक्षित दनकौरी

हवा को आजमाना था जरूरी।
चरागों को जलाना था जरूरी।
सुना है गूंगी हो जाती हैं आंखें,
इन आंखों को रुलाना था जरूरी।

– नवाज देवबंदी

उसे किसने इज़ाज़त दी गुलों से बात करने की।
सलीका तक नहीं जिसको चमन में पांव रखने का।

– मासूम गाजियाबादी

उसने देखते ही दुआओं से मुझे भर दिया।
मैंने तो अभी सजदा भी नहीं किया था।।

– राज कौशिक

उसने कोई सफ़ाई दी ही नहीं,
आदमी बेकुसूर लगता है।

– भावेश पाठक

क्वचिदन्यतोऽपि

हनुमानजी पंचप्राण रक्षक, पंचधर्मा, पंचभूतमय, पंचमुख और पंचपावित्र्य है

हनुमान-जयंती अवसर पर मोरारिबापू का प्रेरक प्रसंगोचित्त उद्‌बोधन

बाप! कहां से शुरू करूं? कहां तमाम करूं? ऐसी स्थिति है! फ़िर भी कैलास गुरुकुल के जगद्‌गुरु आदि शंकराचार्य संवाद गृह से शुरू करूं, जहां शब्द और सूर के उपासक साधक इकठ्ठे हुए थे प्रति वर्ष की भांति और निरंतर चार दिन तक जिसका अभ्यास, जिसका अनुभव और जिसका आनंद हमने सुना और पाया। मैं सभी बैठकों के लिए मेरी भूरिश: हृदय की प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। और इसमें प्रति वर्ष 'अस्मितापर्व' में कहूं वो ठीक तो नहीं लगेगा लेकिन मैं कोई कमिटि से कोई संस्था से जुड़ा नहीं हूं। मैं आप के साथ हूं। आप की ओर से बोल रहा हूं कि कमल की प्रति वर्ष एक-एक पंखुड़ी खुलती जा रही है। और एक सुंदर और सात्त्विक संवादी आयोजन के लिए अच्छा नहीं लगेगा फ़िर भी मेरे आत्मीय स्नेही हरिश्चंद्रभाई और विनोदभाई, उनकी समझ को मैं नमन करता हूं। और 'कैलास गुरुकुल', हमारा जयदेव और छात्रगण, साथसाथ हरीशभाई की पूरी टीम और आप का सहयोग, सब के कारण जो प्रसन्नता मिलती है, उसको बहुत बोल सकता हूं फ़िर भी कुछ कहा नहीं जा सकता!

मैं सब से पहले मेरी प्रसन्नता वो व्यक्त करता हूं रात्रि के कार्यक्रम जो यहां हुए हैं और हनुमान जयंती के पुनित पर्व पर प्रति वर्ष जो एक सात्त्विक उत्सव मनाया जा रहा है। सुना तो है कि सितारे आकाश में होते हैं और समय पर गिरते हैं। मैं इन सितारों को जब देखता हूं तो ये आसमां से गिरनेवाले नहीं है। हम को खुश करने के लिए कुछ समय के लिए जमीन पर आये हैं। और ये सभी हस्तीओं को मैं सलाम करता हूं, नमन करता हूं। किन-किनका नाम लूं? सब के आगे झूककरके मैं प्रणाम करता हूं। दिलीपसाहब नहीं आ पाए। सायराबेन नहीं आ पाई क्योंकि मैं दिलीपसाहब की परिस्थिति जानता हूं। जब-जब उसने बुलाया, मैं गया हूं मिलने के लिए। उनकी तबियत का मैं साक्षी हूं। और मैं बधाई देना चाहूंगा इस भारतीय नारी को कि परदे पर तो आगे होती है लेकिन परदे के पीछे सायराजी जो सेवा कर रही है दिलीपसाहब की, मैं उसका साक्षी हूं। मैंने ही कहा कि आप मत आईएगा। किसी प्रतिनिधि को भेजना। यदि वो भी संभव न हो तो मैं खुद आप के पास आऊंगा। जैसे मैं दिलीपसाहब के पास गया था। आपने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। बहुत-बहुत आप का शुक्रिया! दिलीपसाहब को मेरा सलाम कहिएगा।

दो-एक विशेष एक-एक मिनट का उपक्रम यहां हुआ। हिमालय में जमनोत्री में नौ दिन के लिए मुझे रामकथा गाने का अवसर मिला। उसको शब्दस्थ किया गया एक बूक में 'मानस-जमुना।' और वो आज लोकार्पित हनुमानजी के चरणों में हुआ। ये पुस्तक नहीं है, लोटी उत्सव है। वैष्नवों में यमुनाजी का लोटी उत्सव होता है और ये लोटी उत्सव है। एक विशेष जो घटना यहां हुई; मैं कथा में जब-जब मेरे मन में जो उठा है सो बोला हूं। गुरु के बारे में जो मेरी निष्ठा है वो मैं मुखर होकर बोला हूं। 'मानस' के बारे में मेरे गुरु की कृपा से जो मैंने कुछ पाया है, कुछ महसूस किया सो मैं बीच-बीच में बोलता रहा। और अन्य कार्यक्रमों में प्रसंगोचित जो मेरी अक्ल के अनुसार मैं बोला हूं उसको भी ग्रंथस्थ किया गया। पहले तो गुजराती में था ही और इस बार हिन्दी में।

प्रत्येक रामकथा की एक पुस्तिका होती है। और बिलकुल अहेतु भाव से केवल निरंतर चल रहे तलगाजरडी यज्ञ में आहुति के लिए ही ये मेरे परम स्नेही विवेकी नीतिनभाई और उनकी पूरी टीम जो प्रयत्न करती है और मेरी सूचना से, 'आदेश' शब्द तो नहीं। वो आदेश मानते हैं लेकिन मेरी विनम्र सूचना से प्रत्येक कथा की एक-एक पुस्तिका जब तैयार होती है तो व्यासपीठ को समर्पित करने की मैं दावत देता हूं और इसीलिए ये आते हैं। और साहब! प्रसाद एक बार बांटकर बंद न कर दिया जाय! कभी-कभी ऐसा हो भी कि बार-बार उसको क्यों लोकार्पित? प्रसाद एक बार बांटकर बंद नहीं किया जाता। हररोज बांटना पड़ता है। रामकथा परम प्रसाद है इसीलिए मेरी बिनती पर जब तैयार होती है बूक तो जहां भी मैं कहूं कि नीतिनभाई व्यस्त हो न हो, एक-दो दिन निकालकर के आ जाओ। और ये प्रसाद बांट दिया जाता है। उसके लिए मैं भूरिश: प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। बीजुं कांई नथी थयुं ने! बीजुं कांई रही गयुं होय तो! तो, 'आहुति' के बारे में माधवभाई, ये तलगाजरडा की मिट्टी में तलगाजरडीनी तावडीमां पड़ेलो मारी माँ सावित्रीए पेलो थोड़ो जे लोट नाख्यो हतो इ लोट निमित्त बन्यो छे! अने लोटनो रोटलो थयो इ मारे खावो नथी; समाजने आहुत करी देवो छे। इस धरती की मिट्टी; हनुमंत प्रेरणा से ये सब बहाने हैं। शरफ़साहब दिल्हीवाले कहते हैं-

शायरी तो सिर्फ़ एक बहाना है,
असली मकसद तुझे रिझाना है।

ये प्रेमयज्ञ में जो कुछ इस मिट्टी के प्रति जो भाव व्यक्त किया मैं उसके लिए प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। जे कांइ अत्यारे अहींया थइ रह्युं छे एमां हुं साक्षी रहुं छुं। बने त्यां सुधी हुं दूरथी जोया करुं छुं अने मारी प्रसन्नता व्यक्त करुं छुं। पण आ वखते हुं साक्षी नथी। आ वखते थोड़ोक अेमां इन्वोल्व थयो छुं। शब्द के उपासक, गीत के उपासक, सूर के उपासक अविनाश व्यास, उसका एवोर्ड जो प्रति वर्ष अमदावाद में दिया जाता था। तो मैंने प्रार्थना की कि इस बार का 'अविनाश व्यास अवोर्ड' तलगाजरडा में ही साथ-साथ हनुमानजी के पास ये दिया जाय? मैंने सब को पहले फोन किया। अंकित को कहा, विक्रमभाई को कहा, श्रेयांशभाई को कहा। नथवाणीसाहब को तो मैं नहीं संपर्क कर पाया। लेकिन 'रिलायंस' के नथवाणीसाहब का भी उसमें सहयोग रहता था। और गौरांगभाई तो हमारे वड़ील। स्वाभाविक आप सब ने मेरे पर स्नेहादर उड़ेला और ये घटना यहां हुई। लेकिन उसमें मैं साक्षी नहीं हूं। आदेश भी नहीं। एक क्षण मैंने आंखें बंद करी कि कौन कमिटी रचूं? और इसी क्षण मुझे हुआ कि अब कोई कमिटी नहीं है। हरेक कमिटी में अवोर्ड की रचना में उसमें सब में गौरांगभाई प्रधानरूप में। मैंने कहा, क्यों न ये अवोर्ड गौरांगभाई को दिया जाय? हो सकता है कई लोगों को ये भी हुआ हो। लेकिन इस वक्त मोरारिबापू का निर्णय था। अविनाशभाई, पुरुषोत्तमभाईए गायेली माताजीनी स्तुति हुं 'मानस'मांथी गाऊं-

जय जय गिरिबरराज किसोरी ।
जय महेस मुख चंद चकोरी ।।

जय गजबदन षडानन माता ।
जगत जननि दामिनि दुति गाता ।।
भव भव बिभव पराभव कारिनि ।
बिस्व बिमोहनी स्वबस बिहारिनि ।।

●

माडी तारुं कंकु खर्युं ने सूरज उग्यो...

तो आ एवोर्डनो एकलाए निर्णय कर्यो छे! सीधुं बधाने जणावी ज दीधुं छे! हुं रोज तमारुं मानुं ने तमे एकेय वखत मारुं न मानो साहेब! एक शे'र सुनिये-

जिंदगी में सिर्फ़ पहली बार ईतना ही कहा है मैंने;
बहुत मज़बूत रिश्ते थे बहुत कमज़ोर लोगों से।

पछी खबर पडे छे के आपणे केटला बीजा माटे तूटी गया हता अने ए केटला कमजोर नीकळ्या? अने बधा बोलनारा फरता हता; गानारा फरता हता; सांभळनारो इ नो इ हतो। हवे आज तमे बधा सांभळो! बाप!

रत आवे न बोलीए तो तो अमारा हैयां फाट मरां...

'मानस' में चौपाई है। मैं जानता हूं, इन लोगों के बारे में नहीं कहा जाता। जितना कहो इतना कम है। लेकिन तुलसी कहते हैं-

तदपि कहें बिनु रहा न कोई ।

कहे बिना नहीं रह सकता। इसलिए मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त कर रहा हूं। तो यहां मैं साक्षी नहीं रहा हूं। लेकिन मज़ा छे दूर रहेवामां!

समीप संताप छे झाझा
मज़ा छे दूर रहेवामां...

ईन्सान कमज़ोरिओं का पूतला है साहब! दीक्षित दनकौरी का शे'र याद आ रहा है-

या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ,
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।
लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब ही,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।

तो प्रमाणित डिस्टन्स जरूरी है। ओतप्रोत होना हो तो केवल इश्वर में होना; शब्द में होना; सूर और स्वर में होना। मुझ से भी डिस्टन्स रखना! मेरा त्रापजकर कवि कहे-

समीप संताप छे झाझा,
मज़ा छे दूर रहेवामां...

लेकिन कितना दूर?

सांभळुं तारो सूर,
सांवरिया, एटलो रहेजे दूर।
-निरंजन भगत

तो अमुक डिस्टन्स; उसकी मौज़ आती है। तो मैंने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। आज जनमदिन है उसको लगेगा कि मेरे लिए कुछ बधाई-बधाई कर! कह रहा है कि उसके कारण हो रहा है। और मैं कुछ न बोलूं तो भी ठीक नहीं। हनुमान के बारे में मुझे जो हनुमान समझ में आया है मेरे गुरु की कृपा से वो कुछ कहना चाहूंगा।

हनुमानजी 'रामचरित मानस' के पंचप्राण के रक्षक है। एक भरत, सीता, लक्ष्मण, रींछ और वानर, सुग्रीव। ये पांचों के प्राण की रक्षा यदि किसीने की है तो 'मानस' के हनुमान ने की है। दूसरा, श्री हनुमानजी पंचधर्मा है। तीसरा, मेरी और आप की तरह पूरा प्रपंच पूरा ब्रह्मांड पंचतत्त्व संयुक्त है इसलिए हनुमानजी पंचभूतमय है। पंचभूतमय है; पंचप्राण के रक्षक है; पंचधर्मा है। पंचधर्मा मानी 'मानस' के पंचधर्मा ये हनुमान है।

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा ।
पर निंदा सम अघ न गरीसा ।।

'मानस'कार कहते हैं कि दुनिया में इस परम धर्म यदि कोई है तो अहिंसा। हनुमानजी अहिंसाधर्मा है। मैं समझ रहा हूं कि आप के मन में गड़बड़ होगी कि हनुमान ने तो इतने को मारा! अभियान की शुरूआत में उसने सिंहिका को मारी। लंका प्रवेश के समय उसने मुष्टि प्रहार किया लंकिनी पर। अशोकवाटिका में अक्षयकुमार का तो निर्वाण ही कर दिया! और लंका का रणयुद्ध तो आप जानते हैं कि कईओं को हनुमान ने मारा! तो अहिंसाधर्मा कैसे हनुमान? मैं कैसे कह सकता हूं? जो लोग अत्यंत हिंसा करते थे वो ज्यादा हिंसा न करे इसीलिए बदनामी लेकर उसने कोई-कोई को मारा। यदि उसको न मारते तो असंख्य हिंसा होती। गोस्वामीजी कहते हैं, समाज की हिंसा रुक जाय। अंदर से हनुमान अहिंसाधर्मा है। हनुमानजी का दूसरा धर्म 'मानस' का-

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना ।
सेवा धरमु कठिन जगु जाना ।।

तुलसी कहते हैं, सेवा का धर्म अत्यंत कठिन है। और व्याख्या कि भाष्य करना कोई जरूरी नहीं है। और हनुमानजी ने जो सेवा की है और निरंतर प्राणवायु के रूप में हम सब की जो सेवा कर रहा है हवा के रूप में इसलिए सेवाधर्म। तीसरा धर्म 'मानस' का-

धरमु न दूसर सत्य समाना ।
आगम निगम पुरान बखाना ।।

हनुमानजी सत्यधर्मा है। 'हेमशैलाभदेहं।' सो टच का सोना है। उसके सत्यधर्मा के प्रति कोई ऊंगली नहीं उठा सकता। एक धर्म की व्याख्या है 'मानस' में जो चौथा धर्म है-

धर्म कि दया सरिस हरिजाना ।

दया के समान कोई धर्म नहीं है। हमारे यहां कहते हैं लोग-

दया धरम का मूल है पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िए जब लग घट में प्रान ।।

हनुमानजी दयानिधान है। क्या दयामूर्ति है हनुमान! व्याख्या करने का समय नहीं है। मैं खड़ा-खड़ा बोल रहा हूं इसीलिए जरा भी भ्रांति में मत रहना कि बापू तीन घंटे की कथा सुनाएगा! उसके लिए रायपुर आईए। और-

पर हित सरिस धर्म नहीं भाई ।

●

राम काज लगि तव अवतारा ।

परहित के लिए और जो है उसके लिए और पर मानी परम। जो परम तत्त्व है उसके लिए तेरा अवतार है और तू उतर। पंचधर्मा हनुमानजी है। पंचतत्त्व; पंचप्राण के रक्षक; पंचधर्म और पंचमुख शंकर का अवतार है। पंचमुख है हनुमान। कल ही मुझे आदरणीय परम विवेकी और विनम्र संतूरवादक पंडित शिवकुमारजी बता रहे थे। मैं बात कर रहा था कि थोड़ा ये जो सुना पड़ा है ये ठीक है? तो बोले, हां बापू। उसने मुझे कहा कि हनुमान-शिव के पांच मुख है। इन पंच मुख से पंच राग निकले हैं। उसमें सब से पहला राग निकला भोपाली। मैं शिक्षक का पढ़ रहा था शाहपुर में तो हमारे लिए संगीत का विषय फरज़ियात था। तो मैं पांच राग सीखा था साहब! उसमें सब से पहले भोपाली। करसनदासजी मोढा; हमारे शिक्षक-गुरु थे। उसने भोपाली से शुरू किया था साहब! मैं पांच राग सीखा था आप की दुआ से। एक मालकोश, यहां सब आचार्य बैठे हैं। परीक्षा दे रहा हूं। ऋतु भी परीक्षा की है! पास-नापास का मेरे लिए कोई ताल्लुक नहीं! उस समय थोड़ा थोड़ा सीखे थे। खेर! तो शिवजी मुझे बता रहे थे कि बापू, शंकर के पहले मुख से जो राग निकला था वो भोपाली था; भूप था। वो भूप है। भोपाली पहले। फ़िर उसने कहा, दुर्गा भी निकला और आपने कल शुद्ध कल्याण प्रस्तुत किया। बाबाजी आप को समर्पित!

जब याद आए तुम्हारी...

मैंने कथा में फ़िलम की पंक्तियां गा-गाकर ओलरेडी श्रोताओं को और बावाओं को बिगाड़ा है। लेकिन कैसा बिगाड़ा? जिस तरह कबीर बिगड़ा था। कबीर ने कहा कि दूध में छाश गिर गई लेकिन दहीं जमा हो गया। मथोगे तो नवनीत निकलेगा; घी निकलेगा और विवेक की ज्योति प्रगटेगी। तो ऐसा बिगड़ना है। लेकिन बहत्तरवां साल मेरा शुरू हो चुका है। आई एम सेवन्टी टू रनिंग। अंग्रेजी केम छे? थेन्क यू। परीक्षा आपवी ज छे पछी क्यां यार आज! अने भूल पड़े तो स्वीकारशुं। राजेशे अमारी भूल मने कीधी। हुं ऋणी छुं राजेशनो। में गई कथामां कह्युं-

असत्यो माहेंथी ...

शिखरिणी है ने यह? छः अक्षर पे रुकना।

असत्यो मांहेथी प्रभु परम सत्ये तुं लइजा।

अने सत्तर अक्षर होय ने? शिखरीणीनुं जे बंधारण छे. हवे एमां मारे जोडाई गयुं-

न मे मृत्युशङ्का न मे जातिभेदः।
-शंकराचार्य।

हकीकत में यह शिखरीणी नहीं। लेकिन मैं उसी धून में था तो मैंने कहा, शंकराचार्य का यह शिखरिणी है। मुझे राजेशभैया ने कल कहा कि बापू, माफ़ करना, यह भुजंगी है। ए कबूल करी लेवुं जोइए, हा यार! जेटलुं वहेलुं कबूल करीअे ने एटला साजा जलदी थइ जइए। डोक्टर बतावे ए दवा ज्यारे कहे त्यारे लइ लेवी जोइए। एने पछी मोडुं न कराय। एटले काले कीधुं ने आजे ज! आवुं घणी वखत थइ जाय यार! तमे रोज चार-चार कलाक बोलो त्यारे ख़बर पडे! चालीस मिनिटमां पूरुं करीने वया जाव! बे कांठामां गंगा जाती होय ने त्यारे थोडीक आमेय वही जाय, थोडीक आमेय वही जाय! पी ल्यो! मेरे द्वार खुले हैं। मुझे जब भी कोई चूक बता देता है तो मैं ऋणी हो जाता हूं कि अच्छा किया। मैं दोहराऊं न इसको।

तो शिवजी मुझसे कह रहे थे कि पांच मुख से वो निकले। तो शिवजी मुझे पूछे कि बापू, हनुमंतमत में शिवमत क्या? मुझे पूछे! मैंने कहा भाई, मेरी कसौटी क्यों करते हो? एक दिन बाकी है; ईज्जत रहने दो न! मैंने कहा,

शिवमत यह अनादि मत है संगीत का। और हनुमंतमत शुरू हुआ त्रेतायुग से। जब शिव रुद्रावतार हनुमान आया। शिवमत बहुत आकारित नहीं था; निराकारा था। उस वक्त उसका बंधारण इतना पक्का नहीं था। हनुमंत आया तब उसको बंधारण में डाला आकार में। 'वानराकार विग्रह पुरारि।' फ़िर मुझे कहे कि कोई-कोई साधना पद्धति में संगीत का विरोध क्यों है? मैंने कहा, औरों का मैं कुछ नहीं कहूंगा। लेकिन भारतीय वेदांत में भी संगीत को कहां प्रवेश दिया? जो शंकराचार्य ने गाये जाय ऐसे स्तोत्र लिखे और उसी अद्वैत परंपरा में गाना मना यार! चुस्त अद्वैतवादी होंगे वो आप को गाने नहीं देंगे! मेरे दादाजी विष्णुदेवानंदगिरिजी कैलास आश्रम के पीठाधीश। हवे तलगाजरडानो जीव! खांड-चाना डबला वगाडी वगाडीने अमे ताल शीख्या! एकतारा उपर मंजीरानी साथे अमे गाता। विष्णुदादा को लगा कि मंडलेश्वर हुआ मुझे यहां। कोई गाने नहीं देते। तो अपने कमरे में बैठकर किसी का हारमोनियम छिपा-छिपा मंगवाकर के और वो हारमोनियम पर वो शिवमहिम्न और शिवतांडव गाया करते थे। तो शिवपंचमुख है। और हनुमानजी पंचपावित्र्य है। हनुमानजी ऐसे तो पवित्र ही पवित्र है। अखंड ब्रह्मचर्यनी मूर्ति शुद्ध मानी परम पवित्र। अखंड ब्रह्मचर्यनी मूर्ति शुद्ध संकल्प प्रतिमा। कवि कागबापू कहे कि-

अद्वैत तारा हनुमंत जनमवा अंजनी जोशे...

हनुमानजी पंचपावित्र्य धारण किए हुए हैं। एक देहपावित्र्य; देह की पवित्रता। स्वर्ण; सो टच का स्वर्ण शुद्ध माना जाता है। और 'स्वर्णशैलाभदेहं।' ये स्वर्ण देह है। इसीलिए देहपावित्र्य। अपनी सेवकाई राम के अंगी समझकर सब की सेवा की। लेकिन मूल केन्द्र उसके देह का, गिरने का केवल राम। महामोह। बाकी अंग बनकर ये परमात्मा के सब अंग है। इसकी सेवा तो हनुमान ने की वायुरूप में ही। लेकिन प्रधानत: ये रामकिंकर रहे। देहपावित्र्य; उसका देह इधर-उधर नहीं गया। दूसरा हनुमानजी का दिलपावित्र्य। दिलपावित्र्य का अर्थ क्या? जितनी मात्रा में हमारे हृदय से अवगुण निकल जाय इतना ज्यादा दिल पवित्र होता चलता है।

अतुलितबलधामं हैमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।

जानकीजी को लंका में जब हनुमानजी ने ख़बर दी कि रावणकुल का विनाश हो चुका है। अनूजसहित राघव कुशल है। तब जानकीजी ने हनुमानजी से कहा-

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत ।

इसलिए हनुमान दिलपावित्र्य के प्रतीक है। तीसरा, हनुमानजी दिमाग पावित्र्य धारण कर रहा है। विचार देखो। सुविचार, शुभ विचार और सद्विचार तीनों के उपासक है। इसकी व्याख्या में नहीं जाना है। सुविचार किसको कहे, सद्विचार किसको कहे, शुभ विचार किसको कहे? दिमागपावित्र्य है। और हनुमानजी मुझे बहुत अच्छा लगता है, हनुमानजी चौथा पावित्र्य धारण किया है दर्दपावित्र्य। पीड़ा की पवित्रता ये बहुत आवश्यक है। पीड़ित तो हम सब है। लेकिन पवित्र पीड़ा किसने की है? परंतु दूसरे के साथ कोई रिश्ता-नाता नहीं है और वो पीड़ित है तब जब दर्द आए वो दर्दपावित्र्य है। माँ जानकी रो रही है अशोकवृक्ष के नीचे और जब वो मरने की करार पर थी तब श्रीहनुमानजी महाराज सीताजी के दु:ख को सहन नहीं कर पाये। एकदम दु:खी हो गये। ये दर्दपावित्र्य है। और पांचवां पावित्र्य है दवापावित्र्य; औषधि की पवित्रता। जो हनुमानजी के पास थी। साहब! ये द्रोणाचल पर्वत; उसमें औषधि है संजीवनी। सालों से वहां था। अगल-बगलवालों को पता नहीं रहा होगा कि इसमें संजीवनी है? अगलबगलवालें मरते ही रहे! या तो कोई वैद नहीं मिला। वैद भी होंगे वहां कि भाई इतनी औषधि है यहां। उपयोग करो, कोई मरे ना। लेकिन औषधि मी कोई ऐसे हाथ से सज दी जाती है तब वो दवापावित्र्य का काम करती है।

लाय सजीवन लखन जियाये ।
श्रीरघुबीर हरषि उर लाये ।।

तो बाप! पंचपावित्र्य हनुमानजी में है, ऐसा गुरुकृपा से मेरी समझ में है। बीच में रह गया; हनुमानजी निरंतर वायु के रूप में बहते हैं। कायम सेवा करते हैं। आख़िरी बात कहकर मैं विराम दूं। ये सूत्र तो मुझे बहुत प्रिय है, 'साधु तो चलता भला।' ये जरूरी है। पर वो तो हम घूमते ही रहते हैं जो कला के उपासक है। जिसने विद्या अर्पित की घूमते ही रहते हैं। 'साधु तो चलता भला।' लेकिन मुझे ऐसा लग रहा, केवल चलता भला वो पर्याप्त नहीं। साधु तो जागता भला। 'साधु तो चलता भला' नहीं साहब! 'साधु तो जागता भला।' पर वो जागृति मेरे तुलसी ने बताई-

जानिअ तबहिं जीव जग जागा ।
जब सब बिषय बिलास बिरागा ।।

और तीसरी बात; 'साधु तो चलता भला।' 'साधु तो जागता भला।' और अभी एक वस्तु टूट रही है। 'साधु तो भजता भला।' जागना ज्ञानयोग है। चलना कर्मयोग है। हरि भजना ये भक्तियोग है। और-

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यान ।

बंदगी के बिना जिंदगी का कोई अर्थ नहीं। 'साधु तो चलता भला।' भक्ति न हो तो ज्ञान सूखा। साहब! आंख में तेज भी होना चाहिए और भेज भी होना चाहिए। केवल तेज हो और भेज न हो तो वो तेज बीज को जला देता है, पलपने नहीं देता। भेज चाहिए। आंख में नूर हो और आंख में आंसू भी हो ये आवश्यक है। तो ज्ञानयोग से 'साधु तो जागता भला।' जागृति ज्ञान का प्रतीक। 'साधु तो चलता भला', कर्मयोग। लेकिन 'साधु तो भजता भला', भजन।

बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ।

●

श्री राधे जय राधे राधे श्री राधे ।
श्री राधे जय राधे राधे श्री राधे ।

कौन राधे? जो अपूर्ण को पूर्ण करे इसी तत्त्व को राधा कह रहा हूं। किसी मज़हब को तकलीफ़ नहीं होनी चाहिए कि बावो आख़िर में पोताना धरम तरफ खेंची गयो! मेरा एक वाक्य सुन लीजिए पूरा ज़माना। हुं अहींया बेठो छुं वटलाव्या वगर वहाल करवा। आ हींचको जे छे इ सौने वटलाव्या वगर वहाल करे छे। आप कौन कोम? कौन मज़हब? कौन हो? मुझे कोई लेनादेना नहीं। वटलाव्या वगर वहाल करवानुं। इसीलिए मैं राधा कहूं कि कृष्ण कहूं कि अल्लाह कहूं कि जिसस कहूं। मेरे लिए कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

काबे से बुतकदे से कभी बज़्मे ज़ाम से।
आवाज़ दे रहा हूं तुम्हें हर मुकाम से।

मैं तो कहीं भी जाकर महफ़िल एन्जोय कर सकता हूं। लेकिन यहां इसीलिए आप को बुलाता हूं, मेरे हनुमंत का ये खोराक है। एक भूल; फ़िर एकरार कर लूं। दो-तीन साल हुई, गदा हटाकर के हनुमानजी के हाथ में सितार पकड़वा दिया। मैंने कहीं ये चित्र देखा था जिसमें हनुमानजी सितार बजा रहे थे। तो मैंने सोचा कि ये सितार, कोई भी वाद्य तंतुवाद्य है। इसमें क्या? लेकिन बाद में मुझे धीरेधीरे पता लगा; हरीशभाई ने भी चित्रवीणा, विचित्रवीणा, नारदवीणा, सरस्वतीवीणा और रुद्रवीणा का निर्देश किया। तो रुद्रवीणा नाम जब मैंने सुना तो मुझे लगा कि चलो, ये भूल सुधार लें। सितार हटवा दे और वीणा उसके हाथ में दे दे; रुद्रवीणा। और हनुमानजी के हाथ में क्या है? 'हाथ वज्र।' आनंदशंकर ध्रुव; उसने कहा, वज्र का अर्थ है रुद्र भी। हनुमानजी वज्रपाणि नहीं है, वीणावाणी है। हनुमानजी के हाथ में वीणा होनी चाहिए। और मैं आभारवश हूं हमारे मेरठ के ये आर्टिस्ट, मेरठ के कलाकार जिसने यहां आए और ये सितारवादिका अनुपमा भागवत ने हमें परिचय दिया कि बापू, ये इसको वीणा में कन्वर्ट कर दे। तो ये दोनों ने बड़ी जेहमत लेकर उसको वीणा में उसको वो कर दिया। और हमने बहन हेगडे को प्रार्थना की। उसका नाम भी मैंने सुना कि आप अच्छी वीणावादक है। दो-तीन दिन की ही मुहुलत दी थी। प्रार्थना की कि आप आए और पहली बार वीणा का उद्घाटन आप करके मेरे हनुमानजी को प्रसन्न करे। यद्यपि गदा को वीणा में परिवर्तित करके वीणा बजवाना और वो भी मातृशरीर के पास! हमने आप को बड़ा कष्ट दिया है! फ़िर भी आपने बजाया।

तने पीता नथी आवडतो मूर्ख मन मारा,
पदार्थ एवो क्यो छे के जे शराब नथी?

तने पीतां नहीं आवडतुं होय! कोनुं छे? घायलसाहेब। पीतां नथी आवडतुं, नहींतर नशो क्यां नथी? वगाडतां आवडतुं होय ए गमे ते वगाडी ल्ये छे। इसीलिए आप को कष्ट जरूर हुआ। लेकिन आपने वीणा का उद्घाटन कर दिया। मेरे हनुमानजी को आज से वीणा समर्पित है। आप आई और आपने ये किया। मैं बहुत प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। राधे मीन्स कोई सांप्रदायिक तत्त्व नहीं। जिसके बिना कृष्ण आधे रह जाते हैं उसी तत्त्व का नाम है राधे। जो कृष्ण को भी पूर्ण कर दे। जो समग्र बना दे हम सब को उसीका परम तत्त्व का नाम है राधा। वृंदावन बोली में। इसी अर्थ में पुकारो-

श्री राधे जय राधे राधे राधे श्री राधे ।
श्री राधे जय राधे राधे राधे श्री राधे ।

(हनुमानजयंती के पावन अवसर पर चित्रकूटधाम, तलगाजरडा(गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक ११-४-२०१७)

अस्मितापर्व : २०, तसवीरी झलक

'अस्मितापर्व' के उद्घाटन समारोह में मोरारिबापू एवं अन्य महानुभाव

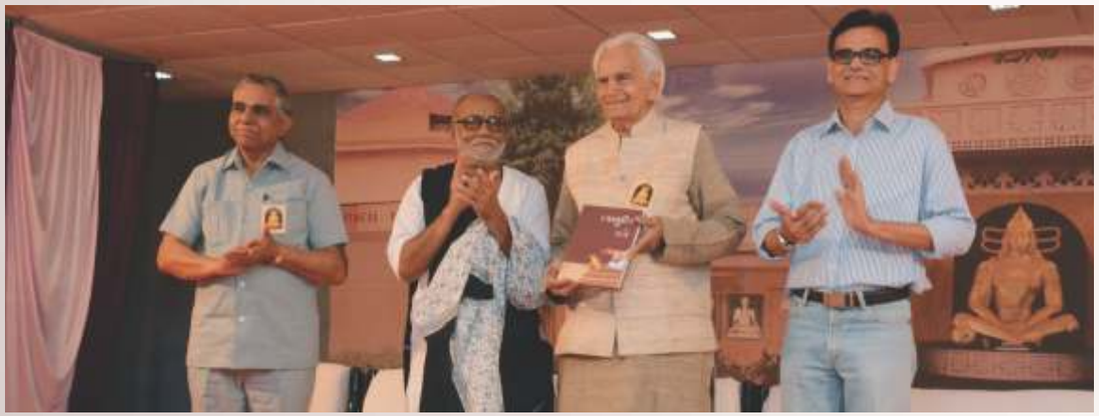

'आहुति' ग्रंथ-लोकार्पण : सर्वश्री गोपालभाई पटेल, मोरारिबापू, रघुवीर चौधरी, विनोद जोशी

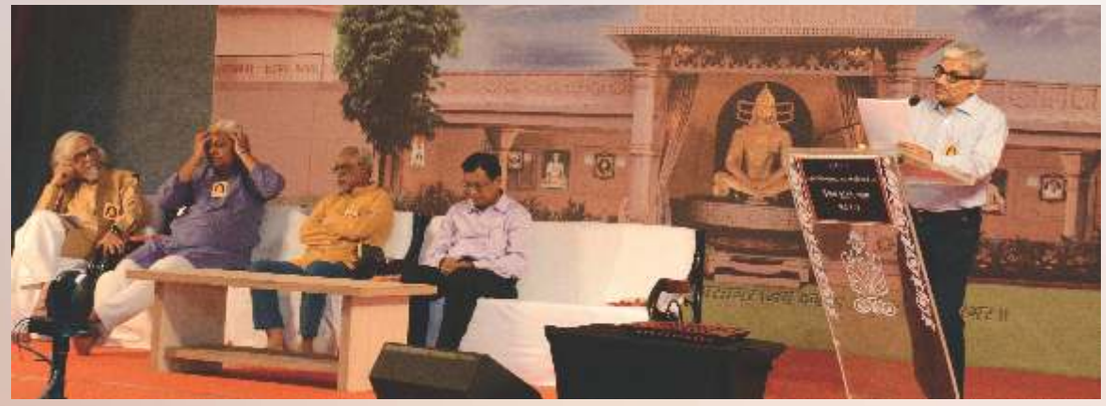

कविकर्मप्रतिष्ठा : सर्वश्री तुषार शुक्ल, संजु वाळा, महेन्द्र जोशी, हर्ष ब्रह्मभट्ट, योगेश जोशी

साहित्यसंगोष्ठि : सर्वश्री वसंत गढवी, प्रवीण लहेरी, भाग्येश ज्हा, कुलीनचंद्र याज्ञिक

साहित्यसंगोष्ठि : सर्वश्री सांईराम दवे, जगदीश त्रिवेदी, भद्रायु वछराजानी, शाहबुद्दीन राठोड

साहित्यसंगोष्ठि : सर्वश्री संजु वाळा, जलन मातरी, अंकित त्रिवेदी, रईश मनीआर

काव्यायन : लता हीराणी, भरत भट्ट 'पवन', हिमल पंड्या, मनोज जोशी 'मन', 'स्नेही' परमार, वारिज लुहार, जयंत डांगोदरा

साहित्यसंगोष्ठि : सर्वश्री कंवलजीत, प्रिया दत्त, आनंद राज आनंद, मेघा ठक्कर

काव्यास्वाद और काव्यगान : ओसमान मीर, श्यामल-सौमिल मुनसी, गार्गी वोरा और अन्य

श्रीमती माधवी मनु पारेख
चित्रकला (कैलास ललितकला अवॉर्ड)

श्री गौरांग व्यास
(अविनाश व्यास अवॉर्ड)

श्री मणिलाल नायक
गुजराती लोकनाट्य-भवाई (नटराज अवॉर्ड)

श्री सरिता जोशी
गुजराती रंगभूमि-नाटक (नटराज अवॉर्ड)

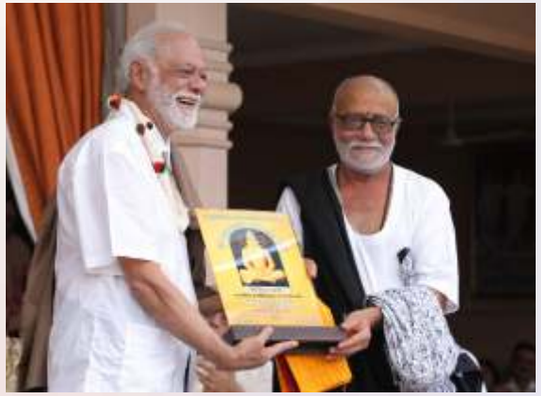

श्री हैदर अली
भारतीय टेलिविज़न श्रेणी (नटराज अवॉर्ड)

श्री शायराबानू (स्वीकार : प्रतिनिधि)
भारतीय फिल्म (नटराज अवॉर्ड)

पंडित भवानी शंकर
शास्त्रीय तालवाद्य संगीत-पखवाज (हनुमंत अवॉर्ड)

पंडित बुधादित्य मुखर्जी
शास्त्रीय वाद्यसंगीत-सितार (हनुमंत अवॉर्ड)

शास्त्रीय वाद्यसंगीत प्रस्तुति : पंडित शिवकुमार शर्मा

बेगम परवीन सुलताना
शास्त्रीय कंठ्यसंगीत (हनुमंत अवॉर्ड)

नृत्य-प्रस्तुति

बांसुरीवादन : पंडित हरिप्रसाद चोरसिया

शास्त्रीय कंठ्यसंगीत प्रस्तुति : बेगम परवीन सुलताना

हनुमानजी की गदा का वीणा में स्वरूपांतर और वीणावादन

॥ जय सीयाराम ॥